# सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 44, अंक : 7
अक्टूबर 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
खन्दौली-283202 (आगरा) उ.प्र.

# सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते–करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 7

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठा।
मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि।
वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः।
अनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि।
सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु।
अवतु मामवतु वक्ता रमवतु वक्तारम्।

*हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा! मेरी वाक् इन्द्रिय मन में स्थित हो जाये। मेरा मन वाक् इन्द्रिय में स्थित हो जाये। हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर! मेरे लिए तू प्रकट हो। हे मन और वाणी! तुम दोनों कमेरे लिए वेदविषयक ज्ञान को लाने वाले बनो। मेरा सुना हुआ ज्ञान मुझे न छोड़े। इस अध्ययन के द्वारा मैं दिन और रात्रियों को एक कर दूँ, मैं श्रेष्ठ शब्दों को ही बोलूँगा, सत्य ही बोला करूँगा। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे। वह रक्षा करे मेरी और मेरे आचार्य की।*

अक्टूबर 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

# SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन


## अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| 1. | विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज | 3 |
| 2. | सम्पादकीय | 8 |
| 3. | योग में ब्रह्मचर्य – डॉ. जे.पी. शर्मा | 11 |
| 4. | अष्टाङ्ग योग – प्रो. कान्तिराम शर्मा | 20 |
| 5. | ध्यान और उसकी महत्ता | 23 |
| 6. | योगभ्रष्ट योगी की कैसी गति ? समाधान – जयनारायण राय | 27 |
| 7. | साधक साधना और साध्य का सम्बन्ध – श्री गणेशदत्त जी | 30 |
| 8. | गोरखपुर में योग प्रचार कार्यक्रम – रुद्रदत्त चतुर्वेदी | 32 |
| 9. | स्वस्थ रहने की रामबाण दवा | 35 |
| 10. | योगेश्वर चरित्र माला – श्री मंगामल | 38 |
| 11. | श्री प्रभु चरणों में समर्पित – राजेश कुमार सिंह | 43 |
| 12. | स्वयं भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज – अवनीश भटनागर | 44 |
| 13. | भाव – प्रसून – डॉ. श्रीमती सरिता भारद्वाज | 47 |
| 14. | अमृत – कण | 48 |



| | | |
|---|---|---|
| एक प्रति | : रु. | 11.00 |
| वार्षिक शुल्क | : रु. | 140.00 |
| द्विवार्षिक | : रु. | 270.00 |
| आजीवन (15 वर्षीय केवल) | : रु. | 850.00 |

# सिद्धों की परिभाषा

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वैय्याकरणों की व्युत्पत्ति के अनुसार सिद्ध-शब्द की परिभाषा निम्नांकित शब्दों में की गई है-

**कर्तुमकर्तु अन्यथा कर्तु शक्तः सैवसिद्धः**

अर्थात् जो सब कुछ करने की सामर्थ्य वाला हो और किसी काम के कर देने पर उसके मन में आये तो उसको फिर विपरीत कर दे और विपरीत कर देने पर भी उसकी मानसिक प्रसन्नता हो तो फिर उसे ही दोबारा पूर्ववत् कर डाले-उसको सिद्ध कहते हैं। इस बात को समझने के लिए तुलसीकृत रामायण में कागभुसुण्डि जी का एक उपाख्यान मिलता है। कागभुसुण्डि भगवान् शिव के एक मन्दिर में उनकी आराधना एवं तपश्चर्या करते थे। किंतु उनके मन में भगवान् शिव एवं भगवान् नारायण के प्रति द्वैत बुद्धि बनी रहती थी। वह समझता था कि भगवान् सदाशिव परात्पर परब्रह्म हैं, उनसे बढ़कर कोई नहीं है, नारायण आदि सभी देवता उनके सेवक हैं। उसकी अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् शिव को परात्पर मानना तो बिल्कुल उचित ही था, क्योंकि साधक को चाहिए कि वह अपने इष्ट में सबसे ऊँची भावना ही रखे। कागभुसुण्डि के मन में यही भावना भरी हुई थी। शास्त्रीय सिद्धान्त है कि -

**मन्नाथश्त्रि जगन्नाथमद्गुरु त्रिजगद्गुरुः**

अर्थात् मेरे इष्टदेव संसार के इष्टदेव हैं और वे परात्पर हैं, उनसे बढ़कर कोई नहीं है और मेरे गुरुदेव त्रिलोकी से बढ़कर नहीं हैं शिव से बढ़कर कोई नहीं। ये ही तीनों लोकों के गुरु हैं। किंतु दूसरे देवों के लिए ऐसी भावना रखना ठीक नहीं। कागभुसुण्डि भगवान् शिव के प्रति परात्पर परब्रह्म की भावना रखता ही था किंतु उनके अलावा अन्य किसी की प्रशंसा का एक भी शब्द किसी से सुनना पसन्द नहीं करता था। उसके गुरुदेव यह चाहते थे कि मेरे इस बच्चे के अन्दर से यह छुद्र बुद्धि हट जाय, इसलिए वे बार-बार उपदेश करते थे और उससे कहा करते थे कि हे पुत्र ! सुनो भगवान् विष्णु और भगवान् शिव दोनों एक ही वस्तु हैं। शास्त्र ने कहा है -

**शिवस्य हृदयं विष्णु, विष्णोर्हृदयं सदाशिवः।**
**ईष्दप्य अन्तरं ज्ञात्वा, रौरवं नरकं व्रजेत्॥**

अर्थात् विष्णु का हृदय भगवान् शिव का हृदय है और शिव का हृदय भगवान् विष्णु का

हृदय है। दोनों एक ही है अलग नहीं है। इन दोनों में जो भी भेदभाव देखता है वह रौरव नरक को जाता है। इस प्रकार का उपदेश कागभुसुण्डि के गुरुदेव उसको अपना बच्चा जानकर अपने ममत्व से प्रायः करते ही रहते थे, किंतु यह उपदेश कागभुसुण्डि को बिल्कुल नहीं रूचता था। वह गुरुवर के इस प्रकार के उपदेश को सुनकर मन ही मन बहुत अधिक चिढ़ता रहता था एवं जिस समय में भी वे गुरुदेव उसके पास आते वह उनसे अप्रसन्न होकर पीठ फेर करके बैठ जाया करता था। उसकी यह आदत भगवान् शिव को भी अच्छी नहीं लगी। अन्ततः उन्होंने उसको श्राप दे दिया और कहा कि – रे मूर्ख! तू गुरु को पीठ देकर मेरी उपासना करता है यह तेरा प्रयास गलत है, इसलिए तू चौरासी लाख योनियों को भोग। चौरासी लाख योनि भोग लेने के बाद जब तेरा अंतःकरण शुद्ध हो जायेगा तभी तू मेरी कृपा का अधिकारी बन पायेगा। यह श्राप कागभुसुण्डि के गुरुदेव ने भी सुना और अपने बच्चे के लिए इतना कठोर दण्ड सुनकर उनके मन में बहुत ही दुःख हुआ। उन्होंने एकाग्र मन से भगवान शंकर की बहुत ऊँची स्तुति की, जिसे सुन करके भगवान शंकर बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने उस ब्राह्मण गुरु से वर मांगने को कहा। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे शिष्य को क्षमा कर दें और आपने जो कठोर दण्ड दिया है वह विपरीत होकर मिथ्या हो जाय। भगवान शंकर ने उत्तर दिया कि हे विप्रवर! मेरा वचन मिथ्या तो नहीं हो सकता, कम से कम इसको एक हजार जन्म तो लेने ही पड़ेंगे। पर जिस–जिस भी योनि में यह जायेगा, उस–उस योनि में इसको दुःख की अनुभूति नहीं होगी। इस प्रकार से ब्राह्मण पर प्रसन्न हो भगवान शंकर ने कागभुसुण्डि के श्राप की निवृत्ति कर दी।

यदि विचार कर देखा जाय तो जब किसी जीवात्मा को जन्म–मरण के दुःख की अनुभूति होगी नहीं तब उसे मिला अभिशाप समाप्त ही समझा जायेगा। जैसे जेल में रह करके जेली लोग तो दण्ड भोगते हैं, किन्तु उसी जेल में रहने वाले जेल के जेलर या अन्य ऊँचे अधिकारी जेल का दण्ड नहीं भोगते। और न वे लोग जेली (बन्दी) कहलाते हैं इस प्रकार से कागभुसुण्डि की श्राप–निवृत्ति गुरु–कृपा से हो गई थी। वह जिस–जिस योनि में गया, उस–उस योनि में कोई दुःसह दुःख उसे हुआ ही नहीं। और यह भी उल्लेखनीय है कि शिष्य का अभिशाप गुरुदेव से पीठ देकर भजन करने के कारण एवं भगवान विष्णु से ईर्ष्या–बुद्धि होने के कारण हुआ। इसी का नाम 'कर्तुंअकर्तुं अन्यथा कर्तुंशक्त:' हुआ करता है। यहां यह उदाहरणपूर्वक सिद्ध की परिभाषा है। सिद्ध लोगों का यह सामर्थ्य होता है कि वे अपनी शक्ति से जैसा भी अनुकूल या विपरीत चाहें तो जाया, करता है।

भगवान विष्णु के विविध चरित्रों में भी पुराणों में इस प्रकार की कथाएँ मिलती है। एक बार नारद मुनि बैकुण्ठ में गये। भगवान विष्णु ने उनको देखकर उनका स्वागत किया और कहा – हे मुनि! तुम तपस्वी तो बहुत ऊँचे हो, किंतु यह बतलाओ कि तुमने कोई गुरु भी बनाया है या नहीं? नारद मुनि ने उत्तर दिया कि महाराज! मैंने अभी तक कोई भी गुरु नहीं बनाया है। इस पर

भगवान विष्णु ने नारद को निगुरा देख करके स्पष्ट कह दिया कि – नारद यदि तुम गुरु नहीं बनाओगे तो तुम्हें चौरासी लाख योनियां भोगनी ही पड़ेंगी, इसलिए तुम कोई गुरु अवश्य बनाओ। नारद ने कहा कि महाराज ! मैं किसको गुरु बनाऊं। भगवान विष्णु ने उत्तर दिया कि तुम मर्त्युलोक को चले जाओ और वहां जाकर जो व्यक्ति तुम्हें पहले मिल जाय उसी को तुम गुरु बना लेना। विष्णु भगवान की ऐसी आज्ञा लेकर वे भू–मण्डल पर आये और भू–मण्डल पर आते ही उन्होंने देखा कि हाथ में मच्छी पकड़े हुए एक मछियारा सामने से आ रहा है। उसको देखकर नारद मुनि ने कहा– महाराज! आप मेरे गुरु हैं। मछियारे ने उत्तर दिया – नारायण–नारायण! हे मुनि! हम आपके गुरु कैसे हो सकते हैं! हम तो रात–दिन मच्छियाँ मारते हैं और इसी व्यापार से अपना पेट–पालन करते हैं, हम आपके गुरु बनने के अधिकारी नहीं। आप किसी और विद्वान ऋषिमुनि को अपना गुरु बनाइये। मछियारे के ऐसे वचन सुन करके नारद मुनि पुनः लौटकर बैकुण्ठ में आये। वहां आने पर विष्णु भगवान ने उनसे पूछा कि कहो नारद जी! तुमने गुरु बनाया या नहीं? नारद ने उत्तर दिया – हां महाराज! मैं गुरु तो बना आया हूँ, किन्तु गुरु पापी मिला है। नारद मुनि के इस प्रकार के शब्दों को सुन करके विष्णु भगवान ने उत्तर दिया कि हे नारद! गुरु और पापी ये दोनों बातें एक साथ कैसे? नारद! तुमने गुरु के लिए पापी शब्द का प्रयोग किया है, अब तो तुम्हें चौरासी लाख योनियां भोगनी ही पड़ेंगी। अतः जाओ और चौरासी लाख योनियों को भोगो। नारद मुनि ने पुनः प्रार्थना की कि – हे प्रभो! मुझे आपने चौरासी लाख योनियां भोगने का श्राप तो दे दिया, किन्तु चौरासी लाख योनियों से छूट जाने का कोई उपाय नहीं बतलाया– इसलिए इनसे छूटने का भी कोई उपाय बतला दीजिए। भगवान विष्णु ने कहा कि हे मुनि! इसका उपाय भी तो तुम्हारे गुरु ही बता देंगे। नारद मुनि भगवान विष्णु का आदेश सुन करके पुनः उसी मछियारे गुरु के पास गये और जा करके उन्हें सब हाल बताकर चौरासी लाख योनियों से छूट जाने का उपाय पूछा। मछियारे गुरु ने उत्तर दिया कि हे नारद! जाओ तुम बैकुण्ठ लोक में जाकर विष्णु भगवान से कहना कि वे चौरसी लाख योनियों के नाम लिखकर बता दें और जब वे नाम लिख दें तो उनके लिखे हुए नामों के ऊपर लेट जाना। बस! इतना करने मात्र से तुम्हारी चौरासी लाख यौनि छूट जायेंगी। नारद मुनि ने ऐसा ही किया। बैकुण्ठ में जा करके विष्णु भगवान से कहा कि महाराज! आप एक बार चौरासी लाख योनियों के नाम लिखकर मुझे दीजिए। भगवान विष्णु ने सर्व शक्तिमत्ता से वे सभी नाम तत्काल लिखकर दे दिये। नारद मुनि उनके ऊपर लेट गये। नारद को इस प्रकार लेटते हुए देखकर विष्णु भगवान ने कहा– नारद! यह क्या कर रहे हो? नारद ने उत्तर दिया– महाराज! मेरे गुरुदेव ने मुझे चौरासी लाख योनियों से छूटने का यही उपाय बतलाया है। विष्णु भगवान नारद मुनि की यह बात सुनकर हँस पड़े और कहा कि देखो नारद! यह है गुरु की शक्ति! उन्होंने हमारे दिये हुए श्राप को भी एकदम मिथ्या कर दिया। इसी शक्ति का नाम 'कर्तुअकर्तुकर्तु' की शक्ति है, यहीं सिद्धों की परिभाषा है।

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी जो परम सिद्धअनादि सिद्ध हैं, वे अपने नेपाल–धाम के चरित्रों के प्रसंग में एक घटना बतलाया करते थे, वह घटना भी 'कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं' की सर्वथा प्रतीक है। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने (मेरे गुरुदेव जी ने) नेपाल–हिमालय की आँखों देखी यह घटना बतलाई, जो इस प्रकार है– एक बार वहां पर हमारे दादा गुरु सदाशिव स्वरूप अति वृद्ध ऋषि जो कि छः महीने में एक बार समाधि से उठते है के सामने उस वनखण्ड की सभी ऋषि–मण्डली इकट्ठी हुयीं और सत्संग होने लगा। उस सत्संग में चर्चा चली कि एक सर्व समर्थ योगी को क्या चाहिए। वह अपने साथ कर्मबन्धन में फँसकर आने वाले जीवों के संस्कार का कुछ भुगतान करे या अपनी योग शक्ति से अपने साथ लगे हुए उनके संस्कारों को काट दे। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है कि –

**भिद्यते हृदय ग्रन्थि, छिद्यन्ते सर्व संशयाः।**
**क्षीयते चास्य कर्माणि, तस्मिन् दृष्टे परावरे।।**

अर्थात् उस सर्व व्यापक परमात्मा के परावर दर्शन कर लेने के बाद मनुष्य की हृदयग्रन्थि खुल जाती है एवं सारे संशयों का नाश हो जाता है। कर्म–बन्धन क्षय हो जाते हैं। परावर दर्शन प्राप्त योगी के लिए यह काम बिना ही किसी प्रयास के स्वतः ही बन जाया करता है। इसलिए इस काम के लिए उनको कुछ भी प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इस पर एक दूसरे पूर्ण सिद्ध महात्मा योगिराज जी ने उत्तर दिया कि जिन लोगों के साथ अभी तक हम बन्धन में चले आये हैं उनका भुगतान कर दिया जावे अर्थात् अपनी आत्म–शक्ति से उनका कुछ भला कर दिया जावे वह उत्तम ही है। इनकी बात को सुनकर उस दूसरे पांच सौ साल वाले ऋषि ने क्रोध में आकर उनको श्राप दे दिया कि तुम तो चौरासी लाख योनि भोगने लायक थे। चौरासी लाख योनि भोग लो, यहां आये ही क्यों? उस ऋषि की इस धृष्टता को देखकर हमारे दादा गुरु महाप्रभु जी ने उसको कहा कि इसकी चौरासी लाख योनि को तो हम देखेंगे कि क्या करना है, किन्तु तुम अभी नीचे उतर जाओ, क्योंकि इतनी ऊँची परिपूर्णता को पाकर भी तुमने अभी तक क्रोध का परित्याग नहीं किया है। श्री महाप्रभुजी के ऐसा कहने पर वह ऋषि उसी समय नीचे उतर गया। उसको नीचे उतरा देखकर के एक दूसरे ऋषि ने महाप्रभु जी के चरणों में प्रार्थना की कि महाराज ! यह ऋषि तो आपके अभिशाप से तत्काल नीचे उतर गया, किंतु ये दूसरे ऋषि जिनको कि चौरासी लाख योनि का श्राप मिला है, उनका क्या होगा? श्री महाप्रभुजी ने उत्तर दिया – वह सब काम हम अभी किये देते हैं। श्री महाप्रभुजी ने उन शापित ऋषि को आज्ञा दी कि तुम थोड़ी देर ध्यान में बैठ जाओ। वह ऋषिराज थोड़ी देर समाधि में बैठ गये। उस समाधि अवस्था में उन्होंने देखा कि वे एक–एक क्षण के अन्दर हजारों पशु–पक्षी आदि की योनियों में से निकलते हुए आ रहे हैं। इस प्रकार श्री महाप्रभुजी ने उनकी एक घण्टे की समाधि के अन्दर ही पूरी चौरासी लाख योनियों का भुगतान भुगताकर पूरा करा दिया। अर्थात् उनकी चौरासी लाख योनि एक घण्टे में निपट गयी। अब उनके लिये कोई भोग बाकी नहीं रहा और वह

ऋषिराज अपने शुद्ध ब्रह्मतत्व में ही ज्यों के त्यों लीन रहे। उनके ऐसे भुगतान कर लेने के बाद एक दूसरे ऋषि ने प्रश्न किया कि – महाराज! आपने इनकी तो निष्कृति कर दी, किन्तु जिस ऋषि को आपने नीचे उतर जाने का श्राप दिया है, उसका क्या होगा? उस पर भी कृपा होनी चाहिए। श्री महाप्रभु जी ने उत्तर दिया कि हां उसके लिए भी ठीक हो जायेगा। उसको नीचे उतरने मात्र का श्राप है, वह अब नीचे उतर आया। नीचे उतरकर अब फिर ऊपर चला जायेगा और वह भी अपनी पूर्व स्थिति में ही स्थित रहेगा। उसके इस अभिशाप की निवृत्ति नीचे उतरने मात्र से हो गई। अब उसके ऊपर भी कोई श्राप लागू नहीं है। अब वह अपनी पूर्ववत् स्थिति में आने के बाद जैसा का तैसा सिद्ध योगी राज ही बना रहेगा। इसी का नाम है 'कर्तु' अकर्तु' अन्यथा कर्तु, सर्वथा शक्त: रैव सिद्ध' यही सिद्ध शब्द का परिभाषा है।

*जब तक अशुभ विचार-मिथ्या, अन्याय, द्वेष, क्रोध, लोभ, असहिष्णुता, बेईमानी, अशान्ति, भोगलालसा, विवाद आदि हृदय में वर्तमान हैं, तब तक मनुष्य का कभी सुखी और पवित्र-जीवन नहीं हो सकता। अत: इन्हें हृदय से निकाल दो, परंतु 'इन बुरे विचारों को हृदय से निकालना है' - इस प्रकार से भी इनका यदि बार-बार चिन्तन होगा तो ये हृदय से निकलेंगे नहीं और भी प्रगाढ़ हो जायेंगे। 'चौथ का चाँद नहीं देखना है' - इसका बार-बार स्मरण करने से वह अवश्य देखा जाता है। 'नहीं देखना है' - यह बात यदि याद ही नहीं आती तो कोई भी चाँद नहीं देखता। इस मकान में रात को भूत आता है, ऐसी बात बार-बार याद रहने पर बिना हुए भी भूत का डर लगने लगता है। जिसे भूत की कल्पना नहीं है, उसे भूत का डर नहीं लगता। इसी प्रकार अशुभ विचारों को निकालने की दृष्टि से भी उनका बार-बार चिन्तन होगा तो वे नहीं निकलेंगे।*

# योग - वार्ता

**– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी**

हरियाणा के एक छोटे से गाँव अलूपुर में प्रकट होकर एक महापुरुष ने भारत भूमि को पवित्र व धन्य किया जो युगों–युगों तक स्मरणीय रहेंगे। जन्म लेने से पूर्व ही अपने पिता श्री को अपने आगमन के संकेत दे दिये थे। यह भव प्रलय वाले योगेश्वर थे। एक बार इन्होंने ऋषिकेश योग साधन आश्रम में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज से अपने पूर्व जन्म के विषय में पूछने का प्रयत्न किया तो उन्होंने कहा– तुम ध्यान योग से अपने पूर्वजन्म के विषय में सब ज्ञात कर लो। ये शीशम झाड़ियों में गंगातट पर ध्यान में बैठ गये और अपने विषय में सब कुछ जान लिया। इन्होंने ध्यान में देखा कि नेपाल की तराई में एक पूर्वांचल पुल है उसी के पास इनकी पर्णकुटी है। ये दिव्य देह धारी एक वैष्णव योगी है। उम्र काफी हो चुकी है। एक दो ब्रह्मचारी इनके साथ रहते हैं। शरीर काफी जर्जर हो गया है। पुन: इस जर्जर देह को त्यागकर अपने संकल्प से अपने भावी माता–पिता का चयन करके पुन: नव देह को धारण कर लिया। इन सब अनुभवों एवं घटनाओं का वर्णन गुरुदेव ने अपने श्री मुख से कर दिया था जिन्हें दिव्य जीवन दर्शन नामक छोटी सी पुस्तिका में लेखक ने निबद्ध किया हुआ है। जन्म लेने के दो–ढाई वर्ष बाद की सारी घटनायें इन्हें याद रहती रही। इन्हें जगदात्मा भगवान् श्री कृष्ण का निरन्तर साक्षात्कार बना रहता था। छोटे से गोपाल के साथ–साथ नित्य नई–नई लीलाओं का अभिनय करते। माता के सामने अपने सखा गोपाल के दिव्य रूप छटा का वर्णन करते किन्तु इनकी बातों को भोली माँ समझती नहीं थी उन्हें कोई आस–पास दिखाई नहीं देता था। माता के पौराणिक–सनातन धर्म के संस्कार थे। पिता पवित्रात्मा थे जो आर्य समाज के विचारों से प्रभावित थे। इसी कारण से आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार के लिए प्राय: दक्षिण भारत में ही समय बिताते थे। जब वे घर रहते, तो छोटे से बालक को ब्रह्म–मुहूर्त में अपने साथ नहर में स्नान कराते व गायत्री जाप के लिए बिठा देते थे। बालक में शिक्षाप्रद नये–नये संस्कार भरते। पिता श्री ने इनका नाम 'चन्द्र दत्त' रखा। सम्भवत: श्री कृष्ण चन्द्र द्वारा प्रदत्त होने से ही 'चन्द्रदत्त' नाम रखा गया। इनके वर्णाक्षरी ज्ञान के लिए घर पर ही व्यवस्था बनाई गई। माता श्री के ममता के कारण इन्हें घर से दूर भेजने में कठिनाई हो रही थी। पुत्र की अवस्था दस वर्ष की थी कि माँ रुग्ण हो गई और कुछ दिनों में देहावसान हो गया। अब पिता श्री इनकी अच्छी शिक्षा के लिए विद्यालय देखने लगे। कई स्थानों पर प्रवेश भी दिलाया गया किन्तु उच्च एवं आदर्श विद्यालय नहीं मिले।

अन्त में उत्कृष्ट पढ़ाई के लिए लाहौर में आचार्य विश्वबन्धु के विद्यालय में प्रवेश

दिलाया गया। वे एक तपस्वी एवं मूर्धन्य विद्वान थे। उनके संरक्षण में तीन–चार वर्ष तक संस्कृत की शिक्षा ली। किन्तु इनके संस्कार इन्हें खींचने लगे। जगवाला श्री कृष्णचन्द्र जी की मोहनी छवि हमेशा इनकी आँखों में रहती थी। लाहौर का विद्यालय छोड़ दिया और श्री वृन्दावन धाम पहुँच गये। इनके चाचा ढूंढते–ढूंढते वहाँ भी पहुँच गये और इन्हें वापिस घर ले गये। पुनः अमृतसर में ही आगे की पढ़ाई के लिए किसी अच्छे विद्यालय में दाखिल करा दिया गया। किन्तु वहाँ भी वैराग्य एवं योग के संस्कार इन पर प्रभाव डाल रहे थे। इनकी 15–16 वर्ष की आयु थी। एक गाँव में (गुरु का डंडियाला) 40 दिन का तीव्रतम अनुष्ठान किया। यह एक शिवालय था। वहाँ इन्हें महाप्रभु रामलाल जी महाराज के विप्रवेश में दर्शन हुए। वे एक कुँए से पानी निकाल कर प्यासे लोगों को पिला रहे थे। फिर उन्होंने इन्हें आज्ञा दी – बेटा, अब इन लोगों को तुम पानी पिलाओ। पानी पिलाने का तात्पर्य था योग पिपासुओं को योगामृत का पान कराना। वहाँ अनुष्ठान समाप्त करके ये किसी पहुँचे हुए सद्गुरु की खोज में लग गये। अन्त में इन्हें महाप्रभु रामलाल जी महाराज का पता ठिकाना मिल गया। ये योग साधन आश्रम ऋषिकेश में पहुँच गये वहाँ योगेश्वर महाप्रभु रामलाल जी महाराज के दर्शन प्राप्त हुए वहीं पर इन्होंने योग की दीक्षा प्राप्त की। दीक्षा देने के बाद श्री प्रभु जी ने पूछा– बेटा! चन्द्रमोहन अब तुम्हारा कहाँ जाने का विचार है। इन्होंने उत्तर दिया – प्रभो! मैं यहाँ से श्री वृन्दावन धाम जाना चाहता हूँ। श्री प्रभु जी ने सहर्ष अनुमति दे दी और कहा – 'प्रातः 5 बजे से 7 बजे तक अवश्य ही ध्यान में बैठना।' इन्होंने 'जो आज्ञा प्रभु जी की' कहकर चरणों से विदा ली। कई महीने श्री वृन्दावन वास करते हुए योगध्यान में डूबे रहे। इन्हें महावाक्यों का साक्षात्कार हो गया। योग की सारी सम्पदा सर्वशक्तिमान ने प्रदान कर दी। योग विभूतियों से परिपूर्ण हो चुके थे। योगी अगढ़धत्ता के प्रकरण में इनकी 'निर्माणकाय' सिद्धि का वर्णन मिलता है। योगी अगढ़धत्ता ने अहंकार से एक बार कह दिया था तुम्हारे गुरु को मैं खींच लूँगा। गुरुदेव ने कह दिया अवश्य खींच लेना हम भी तुम्हारा सामर्थ्य देख लेंगे। दोनों यमुना की बालू में समाधिस्थ हो गये। योगी अगढ़धत्ता ने निर्माण चित्त बना लिया और ऋषिकेश श्री प्रभु जी के पास चल दिये। गुरुदेव जी भी चित्त निर्माण करके पीछे–पीछे हो लिये। अधढ़धत्ता जी ऋषिकेश आश्रम में पहुँच तो गये किन्तु योगेश्वर प्रभु के परम तेज को देखकर आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं हुई। वहाँ जूते खाने की नौबत आ गई, ये जान बचाकर वृन्दावन वापिस आये। तभी से वे श्री प्रभु जी की महिमा का गुणगान करने लगे। चित्त निर्माण की ताकत सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा में ही आती है यह ताकत गुरुदेव में मात्र 19–20 वर्ष की आयु में ही आ चुकी थी। श्री प्रभु जी की आज्ञा से ही गुरुदेव जी लाहौर में योग प्रचार कार्यक्रम में जाने लगे। बात सन् 1932–33 की है। परम पूज्य ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज के संकीर्तन के दिव्य प्रभाव से ऋषिकेश वाले स्वामी शिवानन्द जी को कई घण्टे बेसुध देखा गया था। श्री प्रभुजी ने गुरुदेव को अपने सामने ही योग दीक्षा देने की आज्ञा प्रदान कर दी थी। सन् 1938 में श्री प्रभुजी तिरोधान के पश्चात् भी लोगों ने उनके स्थूल

दर्शन किये, कई लोगों को दीक्षा दी। मृत्युजयी अथवा तत्व विजयी योगी सर्वसमर्थ होते हैं। शरीरों का त्याग और ग्रहण उनके स्वायत्त चीज होती है। कुछ दिन के पश्चात् गुरुदेव को श्री सिद्धगुफा के दर्शन की तीव्र लालसा हुई। श्री प्रभु जी के तपोपूत स्थली का वे दर्शन करना चाहते थे। इसी भावना से वे सवाई पहुँच गये और गुफा की दिव्य छटा को देख कर अभिभूत हो गये। इसे अपने योग प्रचार का केन्द्र बनाने का निश्चय किया। धीरे-धीरे संस्कारी आत्मायें श्री चरणों से जुड़ते रहे और ध्यान योग में दीक्षित होते चले गये। दीक्षा कुण्डलिनी योग की होती थी। इसी कारण से शक्तिपात पाकर स्वतः ही साधक का मन एकाग्र हो जाता था। कई-कई घण्टे ध्यान योग में अवस्थित रहते थे उन्हें बड़े ही दिव्यानुभूतियाँ होती थी। भस्त्रिका प्राणायाम, विभिन्न मुद्रायें स्वतः ही होने लगती थीं। गुरुदेव ने समाज में पतित एवं अधम लोगों को नई राह दिखाकर नव जीवन दिया। लोगों की दशा व दिशा बदल गई। ध्यान योग से सतोगुण चमक जाता है। गुरुदेव अपने सभी बच्चों को ध्यान योग के अभ्यास पर बल देते थे। जिन साधकों को प्राणायाम का अभ्यास कराया, उनका प्रकाशावरण क्षय हो गया और दिव्य दृष्टि पा गये। दीक्षा देने के बाद गुरुदेव की आज्ञा होती थी – 'लल्ला! 5 से 7 बजे प्रातः अवश्य ध्यान में बैठा करना।' गुरुनिष्ठ बच्चे इस आज्ञा का पालन भी करते हैं। ध्यानियों को श्री प्रभु जी की एवं गुरुदेव की दिव्य लीलाओं के दर्शन होते थे जिससे उनकी निष्ठा और दृढ़तर होती चली जाती थी।

योग के क्षेत्र में गुरुदेव ने जो कुछ किया योगि समाज को विदित है। कई एक अखिल भारतीय योग सम्मेलनों में तथा विश्व योग सम्मेलन में अध्यक्षता की। गुरुदेव का योग शास्त्र एवं उपनिषदों का ज्ञान अद्वितीय था। क्रियात्मक पक्ष के अग्रगण्य तो थे ही। सम्मेलनों में इनकी आभा और व्यक्तित्व देखते ही बनती थी। तप एवं ब्रह्मचर्य के साक्षात् मूर्ति दिखाई देते थे। पूरा शिवत्व इनमें झलकता था। सन् 1978-79 में केन्द्र सरकार के योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत योग विज्ञान के तकनीकि विभाग के आप कई वर्ष अध्यक्ष रहे। उसी समय ही योग को विद्यालयों में एक विशिष्ट विषय के रूप में सम्मिलित करने का प्रस्ताव बना था। गुरुदेव कहा करते थे कि योग से ही मनुष्य का सर्वतोमुखी विकास संभव है। इसी भावना से युक्त होकर गुरुदेव ने गाँव-गाँव, शहर-शहर जाकर योग विद्या का प्रचार किया। इस अमर विद्या को पाकर उनके लाखों दीक्षित शिष्य ध्यान योग के अमरपथ पर आरूढ़ हैं। सैकड़ों विरल योगी गुफा-कन्दराओं में बैठे हैं।

इस छोटे से लेख में उनके व्यक्तित्व एवं विभूतियों को निबद्ध करना सम्भव नहीं है। गुरुदेव अपने शिष्यों के लिए कल्पतरू हैं, सभी कामनाओं को पूर्ण करते हैं। गुरुदेव का प्राकट्य आश्विन शुक्ल दशमी को हुआ है। इस कारण से उनके सभी आश्रमों में यह उत्सव 6 अक्टूबर सन् 2011 को बड़े ही धूम-धाम से मनाया जा रहा है। इस पावन अवसर पर गुरुदेव के पावन चरणों में कोटि-कोटि नमन है।

# योग में ब्रह्मचर्य

– डॉ. जे. पी. शर्मा, पाँटा साहिब, जिला सिरमौर, हि. प्र.

हमारे पूर्वजों ने मुनष्य के जीवन को चार भागों में बाँट रखा है। जीवन के सर्वप्रथम भाग को ब्रह्मचर्य, दूसरे भाग को गृहस्थ, तीसरे को वानप्रस्थ तथा चौथे भाग को सन्यास कहा जाता है। जन्म से पच्चीस वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य, पचास वर्ष तक की आयु तक गृहस्थ, पिचहत्तर वर्ष की आयु तक वानप्रस्थ तथा पिचहत्तर से ऊपर सन्यास माना जाता है। श्री मनु महाराज ने ब्रह्मचर्य के बारे में कहा है –

**अविप्लत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत्**

अविप्लुत ब्रह्मचर्य से मतलब है अखंडित ब्रह्मचर्य अर्थात् कभी भी गृहस्थ आश्रम धारण ही न करें। जैसे पेड़ की जड़ अपने मूल स्थान में रहकर स्थाई तथा शक्तिशाली रहती है उसी प्रकार शरीर के लिए मूल रूप में रहना आवश्यक है। कहा गया है –

**प्रासादस्य विनिर्माण मूलमित्तिरपेक्ष्यते।**
**तथैवजीवनस्यादौ ब्रह्मचर्यमपेक्षते।।**

अर्थात शरीर का मूल, ब्रह्मचर्य ही होता है। ब्रह्मचर्य से शरीर चिरजीवित्व बनता है। ब्रह्मचर्य का सीधा साधारण तात्पर्य है कि जो प्राणी ब्रह्म में विचरण करता है, उसे हम ब्रह्मचारी कहते हैं। ब्रह्म में विचरण का भाव ˆ , ब्रह्म की प्राप्ति के लिए साधना करना । हर पल ब्रह्म में समाहित रहना, प्रतिक्षण ब्रह्म का ज्ञान रखना तथा क्षण–क्षण हर वस्तु में ईश्वर की अनुभूति करना आदि।

साधारणतः ब्रह्म के तीन मतलब होते हैं– ईश्वर, वेदज्ञान तथा वीर्य अथवा रज। इन्हीं के आधार पर ईश्वर का साक्षात्कार करना, वेदों का ज्ञान प्राप्त करना तथा अपने वीर्य या रज की रक्षा करना है।

**ब्रह्मज्ञानं तपो या अवश्यं।**
**आचरति अर्जयतिय: स ब्रह्मचारी।।**

अर्थात् वेदादि–शास्त्रों के अध्ययन से ईश्वर ज्ञान प्राप्ति के लिए जो प्राणी अतिशय तपश्चर्या करता है अर्थात् मेहनत करता है तथा मार्ग में आने वाली कठिनाईयों को सहन करता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

'वीर्य धारणं ब्रह्मचर्य' अर्थात् वीर्य का धारण करना ही ब्रह्मचर्य है। जो स्त्री–पुरुष अपने रज तथा वीर्य की रक्षा करते हैं, उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। स्त्री जब अपने रज की रक्षा करती है

उसे ब्रह्मचारिणी तथा पुरुष जब अपने वीर्य की रक्षा करता है उसे ब्रह्मचारी कहते है। मानव के जीवन में ब्रह्मचर्य की अत्यावश्यकता है। ब्रह्मचर्य जीवनी शक्ति का केन्द्र बिन्दु होता है। इसकी महिमा के बारे में कहा गया है–

**ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।**
**आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।।**

अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन से शरीर में शक्ति आती है। शरीर कान्तिमान बनता है। चेहरा ओजस्वी तथा आभामण्डल चमक उठता है। ब्रह्मचर्य की रक्षा राष्ट्ररक्षा कही गयी है। इसी कारण हमारे पूर्वजों ने मानव जीवन को चार आश्रमों में बाँटा था, जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यास कहलाये गये है। ऋषि–मुनियों ने मनुष्यों में वीर्य को तथा स्त्रियों में रज को ब्रह्म कहकर पुकारा है। इन दोनों की रक्षा करने से ब्रह्म की प्राप्ति आसान हो जाती है। अपनी कर्मेन्द्रियों का जो संयम करता है, वह ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचर्य जीवन का काम से कोई सम्बन्ध नहीं होता। काम ब्रह्मचर्यता का कट्टर दुश्मन है। अत: जननेन्द्रिय पर संयम करना ही ब्रह्मचर्य होता है। कामवासनाओं पर पूर्ण संयम रखना ही ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ है। इससे ईश्वर मिलन, वेदाध्ययन तथा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो उठता है।

## ब्रह्मचर्य का महत्व

भारतीय सभ्यता के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य को श्रेष्ठ माना गया है। प्रश्न उठता है कि ब्रह्मचर्य की जीवन में क्या आवश्यकता है। जन्म लेने के बाद बच्चा धीरे–धीरे बढ़ने लगता है तथा ग्यारह वर्ष की आयु तक उसे किशोर कहा जाता है। यह उसकी किशोर अवस्था होती है। किशोर अवस्था से क्रमश: कुमार अवस्था प्राप्त करता है। मनुष्य के पूरे जीवन को चार भागों में बांटा गया है। इन भागों को आश्रम कहा गया है। प्रत्येक आश्रम की अवधि पच्चीस वर्ष की होती है। जब कोई नया मकान बनाता है तब सबसे पहले उसकी नींव रखी जाती है जो मकान का आधार होती है। उसी प्रकार मानव जीवन की नींव का नाम ब्रह्मचर्य है। नींव कमजोर रहने से मकान के गिरने का खतरा बना रहता है ठीक उसी प्रकार ब्रह्मचर्य खराब होने से शरीर रोगों का घर बन जाता है। रोगी शरीर किसी काम का नही होता। शरीर के भौतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास उसके ब्रह्मचर्य जीवन के अनुरूप ही होते हैं। शरीर विकास में कई तरह के तत्वों का योगदान रहता है जिसमें विशेष रूप से प्रोटीन की आवश्यकता पड़ती है। मानव के वीर्य में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होती है। इसी प्रकार औरतों के रज में प्रोटीन होती है। वीर्य का निर्माण प्रोटीन तथा पारे के सहयोग से होता है तथा रज में प्रोटीन के साथ–साथ गन्धक पाई जाती है। प्रोटीन भी न्यूक्लियोप्रोटीन के रूप में पाई जाती है। न्यूक्लियोप्रोटीन का शरीर के विकास में काफी महत्व होता है। इसी से शरीर धीरे–धीरे बढ़ता तथा विकास करता है। अत: अगर इस अवस्था में प्रोटीन कम पड़ जायेगी तो शरीर का विकास भी रुक जायेगा। शरीर में वीर्य की उपस्थिति अखण्डित रहेगी तभी शरीर पुष्ट होगा। इसी कारण शरीर में वीर्य तथा रज दोनों की

रक्षा करना आवश्यक होती है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने मनुष्य के लिए शादी की आयु पच्चीस वर्ष तथा महिलाओं के लिए अट्ठारह वर्ष रखी है। इससे ब्रह्मचर्य परिपक्व बन जाता है। प्राचीन भारत में कन्यायें भी ब्रह्मचर्य के द्वारा युवा पति का वरण करती थी–

**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।**

ब्रह्मचर्य धारण से अमरत्व की प्राप्ति हो सकती है। मानव अजर–अमर बन सकता है। देवताओं ने अजर अमरता ब्रह्मचर्य जीवन से ही प्राप्त किया है–

**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नत।**

तात्पर्य है कि ब्रह्मचर्य के भय से मृत्यु भी सहसा मारने को तैयार नहीं होती है। ब्रह्मचर्य सदाचार का पहला सोपान है। धार्मिक पुस्तकों में ब्रह्मचर्य क्या है, उसके क्या लक्षण हैं? के बारे में लिखा है–

**ब्रह्मचर्य नाम सर्वावस्थासु मनोवाक्कायकर्मभि: सर्वत्र मैथुन त्याग:।**

ब्रह्मचर्य उसे कहते है जहाँ सभी अवस्थाओं में मन, वाणी तथा शरीर द्वारा सर्वत्र मैथुन त्याग हो। अत: ब्रह्मचर्य पालन करने से ब्राह्मणत्व बढ़ता है। ब्राह्मणत्व बढ़ने से ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य में तप तथा धैर्यशक्ति होती है। संसार में ब्रह्मचर्य यश का मूल होता है। ब्रह्मचर्य के बल पर कठिन से कठिन कार्य आसानी से किये जा सकते हैं। राम भक्त हनुमान ने ब्रह्मचर्य के बल पर देवत्व प्राप्त करके भगवान श्री राम के कठिन से कठिन कार्य सम्पन्न किये थे। लंका का दहन करके रावण को निश्तेज कर दिया था। बाबा भीष्म पितामह ने अपने ब्रह्मचर्य के बल पर इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त किया था। काम मोक्ष की प्राप्ति सुदृढ़ शरीर के बिना प्राप्त नही हो सकती तथा शरीर सुदृढ़ बनाने के लिए ब्रह्मचर्य पालन अति आवश्यक होता है। इससे मनुष्य प्रबल इच्छा शक्ति प्राप्त करता है। कमजोर तथा रोगी मनुष्यों की इच्छाशक्ति क्षणिक होती है। यथा –

**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन**

अर्थात् आत्मतत्व बलहीन व्यक्ति के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसीलिए भगवान श्री कृष्णजी महाराज ने ब्रह्मचर्य को शारीरिक तप कहा है–

**सुर भूसुर गुरु विदु सेवकाई। चित्त सरलता सुचिता लाई।**
**ब्रह्मचर्य गतहिंसा भावा। सारीरिक तप पार्थ कहावा।।**

(गीता 17/14)

अर्थात् हे अर्जुन! देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य, और अहिंसा यह सब शरीर सम्बन्धी तप कहे गये हैं। वीर्य धारण से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है। शक्ति के बिना मनुष्य की कही भी कोई भूमिका नहीं रहती। कमजोर को कौन पूछता है? भगवान सदाशिव ने मानव कल्याणार्थ कहा है–

**मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।**
**तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्॥**

बिन्दु अर्थात् वीर्य के पतन से मानव मृत्यु के समान हो जाता है तथा बिन्दु या वीर्य के धारण करने से जीवन चलता रहता है। शरीर का सार तत्व वीर्य ही होता है। अत: इसकी रक्षा हर हालत में करनी ही चाहिए। मानव जीवन की सार्थकता वीर्य धारण से ही आंकी जाती है।

प्राचीन समय में पूर्वज दीर्घजीवी हुआ करते थे। वे अपने जीवन को सदाचार पूर्वक जीते थे। सन्ध्योपासना करते काफी समय बिताते थे। इसी कारण उनके मन में विकार उत्पन्न नहीं हो पाते थे। दीर्घ जीवन जीने की कला ब्रह्मचर्य के कारण ही प्राप्त होती है। जैसे यज्ञों से देवता प्रसन्न रहते हैं, सन्तान उत्पन्न होने से पित्तर तृप्त होते है उसी प्रकार ऋषिगण तथा मुनिजन ब्रह्मचर्य धारण करने से तृप्त रहते हैं। ब्रह्मचर्य धारण करने से मुनियों का तर्पण होता है, ऐसा कहा गया है-

**ब्रह्मचर्येण मुनयो देवा यज्ञक्रियाऽध्वना।**
**पितर: प्रजया तृप्ता इति हि श्रुतिरब्रवीत्॥**

ब्रह्मचर्य एक वृत्त है जो इसका पालन करता है उसे इसका फल प्राप्त होता है। यह मानव जीवन की आधार शिला है। इसके धारण करने से जीवन आसान हो जाता है।

पशु पक्षियों में भी प्राकृतिक रूप से ब्रह्मचर्य होता है। वे केवल ऋतुगामी होते हैं तथा ऋतुकाल में ही कामोपभोग करते है। मानव इस जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसे भी अपने वृत्त का पालन करना ही चाहिए। मेरे पूज्य सद्‌गुरुदेव भगवान अपने प्रवचनों में बतलाया करते थे कि गृहस्थी भी ब्रह्मचर्य धारण कर सकता है। केवल ऋतुकाल में भोग करें तथा सदैव सदाचार जीवन जीते हुए योगमार्ग का अनुसरण करें। ब्रह्मचर्य पालन में अष्टमैथुन से सदैव बचना चाहिए। अष्टमैथुन के बारे में कहा गया है-

**स्मरणं कार्तनं केलि: प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।**
**संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिष्पत्तिरेव च॥**

1. पुरुषों के लिए स्त्रियों के तथा स्त्रियों के लिए पुरुषों के दर्शन करना अर्थात् देखना, 2. उन्हें स्पर्श करना 3. स्मरण करना अर्थात् उनके बारे में विचार करना 4. साथ-साथ खेलना 5. साथ-साथ कीर्तन आदि करना अर्थात् उनके साथ बातें करना 6. उनके बारे में विचारना 7. उनके लिये प्रयत्न करना तथा 8. संभोग करना - ये आठ प्रकार के मैथुन हैं। इनसे बचकर रहना ही अखण्ड ब्रह्मचर्य कहलाता है।

उपरोक्त प्रथम सात नियम बिल्कुल अक्षरश: सही हैं। रत्ती भर भी शंका की आवश्यकता नहीं है। विज्ञान की भाषा में पुरुष धनात्मक आयन है तथा स्त्रियाँ ऋणात्मक आयन होती हैं। आयन को आवेश भी कहा जाता है। विपरीत आवेशों में आकर्षण होता है। अत: जब

विद्युत के धनावेश वाले तार को ऋणावेश वाले तार के साथ मिलाते हैं तब विद्युत पैदा हो जाती है। उसी प्रकार पुरुष तथा स्त्रियों में एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक आकर्षण होता है। आवेश कम, ज्यादा हो सकता है। अत: आवेश ही कामवासना होते हैं तथा कामवासनायें सदैव ब्रह्मचर्य की शत्रु होती हैं।

काम बहुत प्रबल होता है। कामवासना कम या ज्यादा के हिसाब से हर जीवन में विद्यमान रहती है। विपरीत लिंग के देखने, सुनने, स्पर्श करने, हंसने मात्र से जाग उठती है। काम वासना जागने से प्राणी काम के आवेश में आ जाता है। काम वासना, जानवर तो क्या मनुष्यों तक को अंधा बना देती है। काम के जागते ही शरीर में वीर्य का निर्माण होने लगता है। काम जागृत होने से वीर्य की ऊर्ध्वरेता धीरे–धीरे गिरने लगती है तथा ब्रह्मचर्य प्राय: खण्डित होने लगता है। विपरीत लिंगों में काम वासना होती है। परंतु मनुष्यों में स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है। कुछ लोग देखने, सुनने, स्पर्श करने आदि से काम वासना के जागृत होने को सही नहीं मानते। आइये इसे इस कथा से समझने का प्रयत्न करें।

एक बार श्री व्यास जी आश्रम में शिष्यों को अष्टमैथुन के बारे में समझा रहे थे तथा सावधान कर रहे थे कि मनुष्यों को तथा स्त्रियों को एक से दूसरे को सावधान तथा दूर रहना चाहिए। परंतु उनमें से एक शिष्य को गुरुजी के उपदेश पर विश्वास ही नहीं हो रहा था। बार–बार समझाने पर भी वह समझ नहीं पा रहा था कि देखने, सुनने, स्पर्श करने, बातें करने इत्यादि से ब्रह्मचर्य कैसे खण्डित हो सकता है?

कुछ दिनों के उपरान्त गुरु श्री व्यासजी महाराज ने शिष्य को कहीं जाने का आदेश दिया तथा कहा कि अमुक स्थान पर अमुक व्यक्ति को सूचना देकर तुरन्त लौट आना। स्थान कुछ दूरी पर था तथा रास्ता जंगल से होकर जाता था। गुरुजी ने शिष्य को ऐसे समय भेजा जिससे उसका लौट कर आना असंभव था।

पूज्य गुरुवर का आदेश पाकर शिष्य सन्देश लेकर चल पड़ा। नियत स्थान पर नियत व्यक्ति को सन्देश देकर लौट रहा था। रास्ते में रात हो गई। रास्ता जंगल से होकर आता था। तेज आंधी तूफान तथा बादल होने के कारण जंगल में रास्ता भटक गया। काफी प्रयत्न किये मगर असफल रहा। हवा भी ठंडी चल रही थी। रास्ता स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था। कुछ समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे? सहसा कुछ दूरी पर एक कुटिया दिखाई दी। सोचा अब तो रात को इसी कुटिया में विश्राम किया जाय। सुबह होने पर आश्रम चला जाऊंगा। पास जाकर देखा कि कुटिया सुरक्षित है तथा खाली है। वह कुटिया में बैठ गया। कुछ समय के बाद उसे किसी युवती के रोने की आवाज सुनाई दी। ध्यान से सुनने पर देखा कि एक सुन्दर गोरी युवती बैठी–बैठी रो रही है। पास जाकर युवती से रोने का कारण पूछा। सुन्दरी बोली कि वह अकेली है, रात हो गई है, तूफान भी आ रहा है तथा वर्षा हो रही है, उसे डर भी लग रहा है, इसलिए दु:खी है। ब्रह्मचारी शिष्य ने कहा 'आप चलकर कुटिया में विश्राम कर लीजिए।' सुन्दरी ने कहा,

उसमें तो आप ठहरे हुए है ऐसी स्थिति में, मैं भला कैसे रह सकती हूँ? तब ब्रह्मचारी ने कहा 'आप अन्दर कुटिया में आराम से रहें, मैं तो बरामदे में ही रह लूंगा। स्त्री कुटिया में पहुँच गयी। ब्रह्मचारी ने बाहर बरामदे में निकलते हुए स्त्री से कहा। आप अन्दर से दरवाजा बन्द कर लीजिए तथा अन्दर से कुण्डी लगा लीजिए। किसी भी सूरत में रात को दरवाजा न खोलिये, चाहे जंगली जानवर क्यों न खा जाये? इस तरह स्त्री ने दरवाजा अन्दर से बन्द कर दिया। वर्षा मन्द–मन्द हो रही थी तथा ठण्डी – ठण्डी हवा भी चल रही थी। जंगल में घनघोर सन्नाटा छाया हुआ था। रात्रि अंधियारी थी। कभी–कभी जंगली जानवरों की आवाज रात के सन्नाटे को चीर कर सुनाई दे जाती थी। ब्रह्मचारी ने युवती की सुन्दरता को देखा था। उससे बातें भी की थीं। उसके मन में तरह–तरह के विचारों के गुब्बारे फूल–फूल कर उड़ने लगे। मन ही मन अपने विचारों को स्वीकृति भी दे डाली। रात के अन्धकार तथा शीतलमयी हवा के झोंको से काम शनै–शनै जगने लगा। काम ने तुरन्त गति से अंगुली से पौंहचा पकड़ लिया। ब्रह्मचारी काम के आवेश में आ गया तथा सुन्दरी से मिलने के लिए व्याकुल हो उठा। उसने स्त्री से कहा 'दरवाजा खोलो मुझे बहुत ठण्ड लग रही है। युवती ने बड़े शान्त स्वर से कहा दरवाजा प्रातःकाल ही खुलेगा। शिष्य का मन चलायमान हो रहा था। उसने पुनः विनम्रता के साथ कहा 'मुझे ठण्ड लग रही है तथा वर्षा भी हो रही है। इसलिए कृपया दरवाजा खोल दीजिए नहीं तो मैं ठण्ड के कारण मर ही जाऊंगा। स्त्री ने कहा 'दरवाजा नहीं खुलेगा, आपने ही तो कहा था कि किसी भी सूरत में दरवाजा मत खोलना। शिष्य का विवेक शून्य हो गया था तथा और कोई उपाय भी नहीं सूझ रहा था। अतः कुटिया के ऊपर चढ़ गया तथा अन्दर जाने के लिए छत को उखाड़ने लगा। जैसे ही ब्रह्मचारी छत को तोड़कर अन्दर कूदा, उसने देखा कि श्री गुरुदेव व्यास जी महाराज आसन लगाये बैठे हैं। अपने पूज्य गुरुदेव को देखकर शिष्य सन्न रह गया। सुन्दरी तो वहां थी ही नहीं। सफेद दाढ़ी हिलाते हुए श्री गुरुदेव ने धीरे–धीरे आंखें खोलीं तथा बोले– बेटा क्या कर रहे हो? शिष्य का कामान्ध नशा अब उतर चुका था। उसने तुरन्त अपने गुरुदेव के श्री चरण पकड़ लिये। क्षमा मांगते हुए बोला 'गुरु आप सत्य ही कहते थे। मेरा अज्ञान अब दूर हो गया है। आज से मैं आपके आदेशों का शत प्रतिशत पालन करूंगा। अतः योग पथ के साधकों को अष्टमैथुनों से यथोचित बचने का प्रयत्न करना ही चाहिए।

## काम जागृत होने के कारण

मनु महाराज ने कामवासनायें जागृत होने के लिए आठ प्रकार के मैथुन बतलाये हैं। मनुष्यों में काम की जागृती दो कारणों से होती है –1. आन्तरिक कारण, 2. बाहरी कारण।

**1) आन्तरिक कारण** – सामान्यतः चिकित्सा विज्ञान के अनुसार हर प्राणी की चार मूलभूत आदतें होती हैं जिनकी पूर्ति होने पर, दोबारा पूर्ति करने की आवश्यकता रहा करती है। अतः बार–बार पूर्ति करनी पड़ती है। जैसे– भूख, प्यास, नींद तथा कामवासना। मनुष्य भोजन करता है परंतु फिर भूख लगती है तथा फिर भोजन करता है। सुबह चाय नाश्ता लेने के बाद

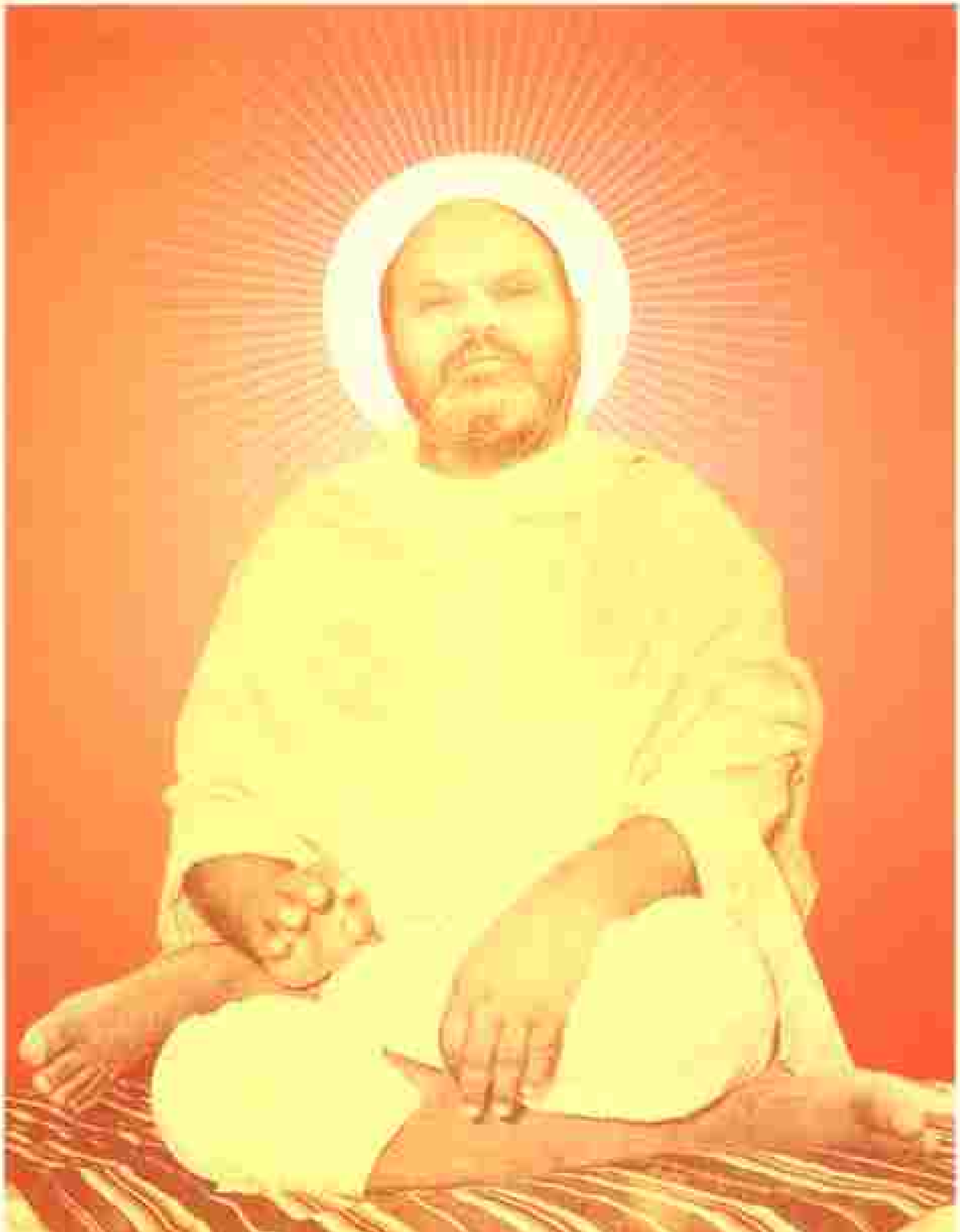

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

दोपहर को भोजन करता है। शाम को चाय नाश्ता लेता है तथा कुछ देर बाद फिर रात का खाना खाता है। रात को खूब सोता है पर दूसरी रात फिर नींद आती है। उसी प्रकार काम वासना की एक बार भूख शान्त करने के बाद पुनः काम की भूख जाग उठती है। हर प्राणी में कामेक्षा विद्यमान होती है। कामवासना कभी शान्त नहीं होती जैसे भूख बार–बार लगती है तथा बार–बार कुछ न कुछ खाते पीते हैं उसी प्रकार काम वासना की तृप्ती भी बार–बार की जाती है। यह प्राणी की स्वाभाविक आवश्यकता है।

2) **बाहरी कारण**– कामुक साहित्य पढ़ना, कामुक बातें करना, कामुक दृश्य देखना तथा मन के आठ प्रकार के मैथुन हर प्राणी के बाहरी कारण होते हैं। आन्तरिक आवश्यकता न होने पर भी इन बाहरी कारणों से काम जाग जाया करता है।

हमारे पूर्वजों ने दोनों प्रकार के कारणों पर विजय पाने के उपाय बतलाये हैं। भीतरी कारणों से काम जागृत न हो इसके लिए सदैव सात्विक आहार लेने पर जोर दिया है। आसन, व्यायाम आदि करने की सलाह दी है। प्राणायाम ब्रह्मचर्य रक्षा का सर्वश्रेष्ठ प्रबल साधन बतलाया है। इससे शरीरस्थ इन्द्रियां वश में रहती हैं। परमात्मा की भक्ति, पूजन इत्यादि से भी सद्विचार पैदा होने से काम वासनायें सुप्त बनी रहती हैं। सदाचार तथा संयमित जीवन शैली अपनाते हुए ध्यान योग का अभ्यास बड़ा ही कल्याणकारी मार्ग है।

बाहरी कारणों से काम जागृत न हो, उसके लिए ऐसे साहित्य न पढ़ें जिससे वासना बढ़ती हो, ऐसे दृश्य न देखें जिससे काम जागृत होता हो। अष्टमैथुन कदापि न अपनावें। बाहरी कारणों पर दबाव डालने के लिए मन की इच्छा शक्ति प्रबल बनाये रखने की आवश्यकता होती है। अपने को व्यस्त बनाये रखें ताकि मन इधर–उधर न भटके। कहते हैं– 'खाली दिमाग शैतान का घर।' व्यस्तता बनाये रखने को स्वाध्याय का अभ्यास करते रहें। खूब सत्संग करें। अपने को खेल–कूदों में व्यस्त रखें। ऐसा करने से स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा तथा व्यस्तता भी बनी रहेगी। सदैव सात्विक भोजन करें। सबके साथ मिल–जुलकर रहें। इन उपायों को अपनाने से काम को जागने का अवसर ही नहीं मिलेगा। अकेलेपन में काम खूब मचलता है। अतः भगवान कृष्ण जी महाराज ने कहा है कि ज्ञानरूपी अंकुश से मन को वश में करें।

## ब्रह्मचर्य में उर्ध्वरेतस की आवश्यकता

शास्त्रों में हमारे विद्वान पूर्वजों ने ब्रह्मचर्य में उर्ध्वरेतस की बात पर ज्यादा जोर दिया है। आइये इस शब्द को समझने का प्रयत्न करें। ब्रह्मचर्य पर अनेकों ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। उर्ध्वरेतस का भाव है कि मनुष्यों में 'वीर्य' तथा औरतों में 'रज' उर्ध्वागामी हो जाता है। माना जाता है कि वीर्य या रज जननेन्द्रिय से बाहर निकलकर सुषुम्ना नाड़ी के अन्दर से होता हुआ मस्तिष्क की ओर जाने लगता है तथा विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं में बदल जाता है। जिससे ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी के मुख, मस्तिष्क आदि पर ओज (Aura), तेजस्विता की वृद्धि होने लगती है। ब्रह्मचारी का आभामण्डल चमक उठता है। वह आध्यात्मिक शक्तिशाली तथा

आनन्दविभोर हो जाता है। वीर्य या रज की इसी स्थिति को 'ऊर्ध्वरेतस' कहा गया है। यह प्रक्रिया स्त्री तथा पुरुष दोनों में होती है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी इस प्रक्रिया पर अपनी मोहर लगा चुका है।

विज्ञान की मान्यता है कि पुरुष का वीर्य, पौरुष ग्रन्थियों (अण्डकोषों) में बनता है। उनके अनुसार अण्डकोषों से कोई भी रास्ता, कोई नस, नाड़ी ऐसी नहीं है जिससे वीर्य सीधे मस्तिष्क तक पहुँचता हो। कोई सूक्ष्म से सूक्ष्म मार्ग भी नहीं है। वीर्य के निकलने का एकमात्र रास्ता जननेन्द्रिय ही है जिससे वीर्य या रज बाहर निकलता है। इसलिए पूर्वजों का कथन सत्य है कि वीर्य या रज उर्ध्वगामी होकर ऊपर जाता है। योगसाधन उर्ध्वगामी बनने में सहायक होते हैं। इसलिए पूर्वजों ने हमें शीर्षासन, सर्वांगासन आदि आसन करने पर जोर डाला है। उन्होंने कहा है कि ब्रह्मचार्यो को ये आसन वीर्य को उर्ध्वगामी करने के लिए अवश्य करने चाहिए।

हमारे पूर्वजों का ज्ञान उच्चस्तर का रहा है। त्रिकालदर्शी ऋषियों का उर्ध्वरेतस का मत पूर्णरूपेण सत्य और वैज्ञानिक है—

मनुष्य या स्त्री की बाल्यावस्था में वीर्य या रज का निर्माण नहीं होता है। किशोरावस्था से इसका निर्माण शुरू होने लगता है। सामान्यावस्था में निर्माण प्रायः धीरे-धीरे होता है। परंतु काम वासना होने पर इसका निर्माण तेजी से होने लगता है।

वीर्य में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन होती है। प्रोटीन भी इसमें न्यूक्लियोप्रोटीन होती है। प्रोटीन के अतिरिक्त 'पारा' होता है। दोनों ही प्रोटीन तथा पारा शरीर निर्माण तथा विकास करते हैं। पारा तथा प्रोटीन, जीव पैदा करने में सक्षम होते हैं। औरतों के रज में प्रोटीन के अतिरिक्त 'गन्धक' तत्व होता है। वीर्य तथा रज के संगठन से जीव निर्माण होने लगता है। इसी कारण वीर्य को 'ब्रह्म' के नाम से सम्बोधित किया गया है। भाव है कि वीर्य में सृजन शक्ति होने के कारण ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म ने ब्रह्माण्ड का निर्माण किया है, उसी प्रकार वीर्य, जीव का निर्माण करता है।

जब वीर्य बाहर नहीं निकलेगा तब वह उर्ध्वगामी होकर शरीर को पुष्ट शक्तिशाली ऊर्जावान बनायेगा तथा शरीर वृद्धि करेगा। इस तथ्य से उर्ध्वरेतस की प्रक्रिया होना सिद्ध होती है। भाव है कि वीर्य को बनाने वाले तत्व, शरीर से बाहर न निकलकर शरीर के निर्माण अथवा विकास में काम आने लगते हैं। जिससे शरीर शक्तिशाली बन जाता है। इससे ब्रह्मचारी के ओज तथा तेज में वृद्धि होती है।

इसी प्रकार ब्रह्मचारिणी स्त्री रहेगी तब उसका मासिक धर्म काफी लम्बी आयु के बाद ही शुरू हो सकेगा। ब्रह्मचारिणी होने पर स्त्री गर्भधारण तो करेगी नहीं। ऐसा होने से जो शक्ति उसके गर्भ धारण, बच्चे के शरीर निर्माण आदि में खर्च होगी वह स्वतः ब्रह्मचारिणी के अपने शरीर विकास में लगेगी। जिससे उसका शरीर पुष्ट, कान्तिमान, ओजस्वी तथा तेजस्वी हो उठेगा।

अतः ब्रह्मचर्य पालन करने से स्त्री तथा पुरुष दोनों में प्राणशक्ति अधोगामी न होकर उर्ध्वगामी होगी। ऐसा होने से मनुष्य शारीरिक और मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ, दीर्घ जीवी और श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण बनेगा।

महाराज महर्षि पतंजलि जी ने योग दर्शन के (सा. 2/38) में वीर्य लाभ का फल बतलाते हुए लिखा है जो भी प्राणी वीर्य लाभ अर्जित करता है, वह ब्रह्मचारी है–

**ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः**

अर्थात् साधक में ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति हो जाने पर सामर्थ्य का लाभ होता है। इसके अनुसार जो सद्गृहस्थ वीर्य लाभ करते हैं वे सब ब्रह्मचारी ही कहने योग्य हैं। मन से, वाणी से तथा कर्म से जो मैथुन नहीं कर रहे, ऐसे गृहस्थ वास्तव में ब्रह्मचर्य है।

जब हृदय कामवासनाओं से युक्त हो तथा शरीर से ब्रह्मचर्यवृत्त धारण किया हो, ऐसा मनुष्य ब्रह्मचारी नहीं कहा जा सकता–

**हृदि कामाग्निना दीप्ते कायेन वहतो वृतम्।**
**किमिदं ब्रह्मचर्य ते मनसा ब्रह्मचारिणः॥**

योग सिद्धि के इच्छुक साधकों को ब्रह्मचर्य का पालन हर हालत में करना श्रेयस्कार है। इसके बिना सफलता मिलना दुष्प्राय है।

*तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते, तुम्हें केवल सेवा का अधिकार है। प्रभु की संतान की, यदि भाग्यवान हो तो, स्वयं प्रभु की ही सेवा करो। यदि ईश्वर के अनुग्रह से उसकी किसी संतान की सेवा कर सकोगे तो तुम धन्य हो जाओगे। अपने को ही बहुत बड़ा मत समझो। तुम धन्य हो, क्योंकि सेवा करने का तुम्हें अवसर मिला है, और दूसरों को नहीं मिला। यह सेवा तुम्हारे लिए पूजा तुल्य है।*

*–स्वामी विवेकानन्द*

# अष्टाङ्ग योग

**– प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ**

(गतांक से आगे...)

भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी माया को एक ऐसा अद्भुत पिप्पलवृक्ष बताया है जो कि अव्यय है, जिसकी मूल किसी भी जीवात्मा की पहुँच से बाहर अनादि तथा अनन्त परमार्थतत्व में अक्षय स्वभाव के रूप में गुप्त है तथा उससे प्रकट होने वाले तीन गुणों से पल्लवित है। उसमें से पंच क्लेशरूपी मूलबन्ध तथा त्रिगुणात्मक कर्मरूपी अनुबन्ध सर्वत: ऊपर तथा नीचे की ओर व्याप्त हैं। परमात्मा की कृपा के बिना इन बन्धनों से मुक्ति पाना असम्भव है और परमात्मा की कृपा उसी पर होती है जिसका अन्त:करण पंचक्लेशों के विकारों से मुक्त होकर विशुद्ध हो गया है तथा अनादि काल से अर्जित पापकर्मों के संस्कारों के मल से मुक्त होकर विशुद्ध दर्पण के समान परमात्मा के अनन्त स्वरूप के प्रतिबिम्ब को धारण करने की योग्यता हो। विशुद्ध अन्त:करण में ही आत्मतत्व प्रकाशित होता है। इस तथ्य की उपनिषद् भी पुष्टि करते हैं कि –

**एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्य:।**

**यस्मिन् प्राण: पंचधा संनिवेश:।।**

**प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानाम्।**

**यस्मिन् विशुद्धे विभति एष आत्मा।।**

अर्थात् सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा शुद्ध चित्त के द्वारा ही जाना जाता है। इसी सर्वव्यापी आत्मतत्व में प्राण ने प्रवेश करके अपने को तेजयुक्त कर लिया, ठीक उसी प्रकार कि लोहपिण्ड अग्नि में प्रवेश करके अग्नि की ऊष्णता तथा तेज से युक्त हो जाता है। यही तेजयुक्त प्राण सभी प्राणियों के चित्त में व्याप्त होकर रहता है तथा शरीरों में जीवन का संचार करता है। यही प्राण प्रकृति से मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों की वृत्तियों को आकर्षित कर अन्त:करण बनाता है जिसमें वृत्तियाँ ही संसार का अनुभव कराती हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में तीन गुणों का विशेष योगदान है। इस माया के विधान में गुण तथा कर्म कार्य–कारण का युग्म बनाते हैं यानि एक दूसरे पर आश्रित हैं। भगवान श्रीकृष्ण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि गुण ही कर्म के कर्ता हैं, क्योंकि –

**प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै: कर्माणि सर्वश:।**

**अहंकारविमूढात्मा कर्ताहं इति मन्यते।।**

**नान्यं गुणेभ्य: कर्तारं यदा दृष्टा अनुपश्यति।**

**गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भाव सोऽधिगच्छति।।**

अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों का विधान प्रकृति के तीन गुण सत्व, रज तथा तम के द्वारा ही सम्पन्न होता है। अज्ञान के आवरण में जीवात्मा भ्रान्तिवश अपने को कर्ता समझती है। जब योगसाधना के द्वारा क्षेत्रज्ञ अपने को क्षेत्र से भिन्न अनुभव करता है यानि मन तथा बुद्धि से भिन्न अपने ज्ञानस्वरूप का अनुभव करता है तब वह पाता है कि समस्त कर्मों के कर्ता प्रकृति के गुण ही हैं। इस प्रकार की अनुभूति के उपरान्त जब वह अपनी स्वभाविकी गुणातीत तुरिया अवस्था में आ जाता है, तब वह परमात्मभाव को प्राप्त कर लेता है। कर्म करने से गुणात्मक भावों की उत्पत्ति होती है। जैसा कर्म वैसा गुणभाव प्रकट होता है। इसकी भी भगवान श्रीकृष्ण पुष्टि करते हैं कि –

**कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियते अर्जुन।**

**संगं त्यक्त्वा फलं चैव स: त्याग: सात्विको मत:।।**

**दु:खमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात् त्यजेत्।**

**स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।।**

**नियतस्य तु सन्यास: कर्मणो नोपपद्यते।**

**मोहात् तस्य परित्याग: तामस: परिकीर्तित:।।**

अर्थात् कर्मों की श्रेणी में अनेक प्रकार के कर्म हैं। उनमें विशेषत: त्यागकर्म, यज्ञकर्म, तपकर्म, दानकर्म तथा स्वाध्यादि कर्म आते हैं। यह सभी गुणभावों की उत्पत्ति करते हैं तथा उनके विकारों के रूप में अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश रूपी पंच क्लेशों को जन्म देते हैं। यहाँ त्यागकर्म के स्वरूप को बताते हैं कि जब जीवात्मा कर्तव्य बुद्धि से अपने प्रारब्ध कर्मों को करते हुए उनके फल की कामना नहीं करती तथा रागद्वेष की वासना से मुक्त रहती है तब वह सतोगुणी त्याग कहलाता है। जब शरीर को कष्ट प्राप्त होने के भय से तथा उसके फल को दुखरूप समझकर कर्म का त्याग कर देती है तब वह राजसी त्याग है। जब अज्ञानवश प्रारब्धकर्म का त्याग किया जाता है तब उसे तामसी त्याग कहा जाता है। इसी प्रकार तपकर्म भी गुणभावों को जन्म देते हैं। भगवान श्रीकृष्ण समझाते हैं कि –

**श्रद्धया परया तप्तं तप: त्रिविधं नरै:।**

**अफलकांक्षिभि: युक्तै: सात्विकं परिचक्षते।।**

**सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।**

**क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।।**

**मूढग्राहेण आत्मनो यत्पीड़या क्रियते तप:।**

**परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।।**

अर्थात् परमश्रद्धा के साथ किया गया तपकर्म भी गुणों के अनुसार तीन प्रकार का होता है। जो तप योगयुक्त होकर तपस्या के फल की कामना के बिना किया जाता है। उसे सात्विक

कहा जाता है। जो तप अहंकारपूर्वक मान–सम्मान प्राप्त करने के लिए किया जाता है, वह राजसी गुण वाला होता है। जो तप अन्य प्राणियों को कष्ट देने के उद्देश्य से पीड़ा सहते हुए हठपूर्वक किया जाता है वह तमोगुणी कहलाता है। दान तथा यज्ञादि अन्य कर्म भी इन्हीं तीन श्रेणियों में विभक्त हो जाते हैं। प्रत्येक कर्म के पीछे कोई न कोई गुणात्मक भावना गुप्त रहती है। यदि इस भावना में न तो कर्तापन का अहंकार है और न कामना के रूप में कोई स्वार्थ छिपा है तब केवल गुण ही गुणों में व्यवहार करते हैं और ऐसा कर्म कर्मबन्धन का कारण नहीं बनता। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं कि –

तस्मात् असक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो हि आचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।।

अर्थात् कर्म के पीछे मन में जो फलासक्ति होती है, वही मायिक बन्धन का कारण होती है। इसलिए जो साधक निरन्तर नित्यप्रति आसक्तिरहित होकर अपने कर्तव्यों को निभाते हैं, वही निरासक्त साधक लोकहित में कर्म करते हुए परमात्मस्वरूप को पा जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण इसका कारण भी बताते हैं कि

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्माणि अभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित करोति सः।।

अर्थात् जो यथालाभसन्तुष्ट हैं, किसी पर किसी भी रूप में आश्रित नहीं है तथा लोकहित में केवल कर्तव्यभावना से निर्लिप्त होकर कर्म करता है किंतु उस कर्म की सफलता अथवा असफलता से उसका अन्तःकरण प्रभावित नहीं होता। ऐसा कर्ता कर्म में प्रवृत्त सा दिखाई देता है किन्तु उसे कर्मबन्धन नहीं होता।

असतां दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात्।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः।।

(वन. 1/29)

दुष्ट मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से तथा एक आसन पर बैठने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य किसी कार्य में सफल नहीं हो पाते।

# ध्यान और उसकी महत्ता

## (शिवपुराण से)

(योग–साधकों के लिए ध्यान की साधना का अभ्यास परम आवश्यक रहता है। बिना इस अभ्यास की परिपक्वता के समाधि सिद्धि होती ही नहीं। इसलिए ध्यान की अपनी महत्ता है। पढ़िए इस सम्बन्ध में शास्त्रीय अभिमत। —सम्पादक)

कुछ लोग मन की स्थिरता के लिए स्थूल रूप का ध्यान करते हैं। स्थूल रूप के चिन्तन में लगकर जब चित्त निश्चिल हो जाता है, तब सूक्ष्म रूप में वह स्थिर होता है। भगवान शिव का चिन्तन करने पर सब सिद्धियाँ प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाती हैं। अन्य मूर्तियों का ध्यान करने पर भी शिव रूप का अवश्य चिन्तन करना चाहिए। जिस–जिस रूप में मन की स्थिरता लक्षित हो, उस–उस का बारम्बार ध्यान करना चाहिए। ध्यान पहले सविषय होता है, फिर निर्विषय होता है – ऐसा ज्ञानी पुरुषों का मत है कि कोई भी ध्यान निर्विषय होता ही नहीं। बुद्धि की ही कोई प्रवाहरूपा सन्तति 'ध्यान' कहलाती है, इसलिए निर्विषय बुद्धि केवल–निर्गुण निराकार ब्रह्म में प्रवृत्त होती है।

अतः सविषय ध्यान प्रातःकाल के सूर्य किरणों के समान ज्योति का आश्रय लेने वाला है तथा निर्विषय ध्यान सूक्ष्म तत्व का अवलम्बन करने वाला है। इन दो के सिवा और कोई ध्यान वास्तव में नहीं है। अथवा सविषय ध्यान साकार स्वरूप का अवलम्बन करने वाला है तथा निराकार स्वरूप का जो बोध या अनुभव है, वही निर्विषय ध्यान माना गया है। वह सविषय और निर्विषय ध्यान ही क्रमशः सबीज और निर्बीज कहा जाता है। निराकार का आश्रय लेने से उसे निर्बीज कहा जाता है और साकार का आश्रय लेने से सबीज की संज्ञा दी गयी है। अतः पहले सविषय या सबीज ध्यान करके अन्त में सब प्रकार की सिद्धि के लिए निर्विषय अथवा निर्बीज ध्यान करना चाहिए। प्राणायाम करने से क्रमशः शान्ति आदि दिव्य सिद्धियाँ सिद्ध होती हैं। उनके नाम हैं –शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद।

समस्त आपदाओं के शमन को शान्ति कहा गया है। तम (अज्ञान) का बाहर और भीतर से नाश ही प्रशान्ति है। बाहर और भीतर जो ज्ञान का प्रकाश होता है, उसका नाम दीप्ति है तथा बुद्धि की जो स्वस्थता (आत्मनिष्ठा) है, उसीको प्रसाद कहा गया है। बाह्य और आभ्यन्तर सहित जो समस्त करण हैं, वे बुद्धि के प्रसाद से शीघ्र ही स्वच्छ (निर्मल) हो जाते हैं।

ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान प्रयोजन – इन चार को जानकर ध्यान करने वाला पुरुष ध्यान करे। जो ज्ञान और वैराग्य से सम्पन्न हो, सदा शान्तचित्त रहता हो, श्रद्धालु हो और जिसकी बुद्धि प्रसाद गुण से युक्त हो, ऐसे साधक को ही सत्पुरुषों ने ध्याता कहा है। 'ध्यै

चिन्तायाम्' यह धातु है। इसका अर्थ है चिन्तन।

भगवान शिव का बारम्बार चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। जैसे थोड़ा सा भी योगाभ्यास पाप का नाश कर देता है, उसी तरह क्षणमात्र भी ध्यान करने वाले पुरुष के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। श्रद्धापूर्वक, विक्षेपरहित चित्त से परमेश्वर का जो चिन्तन है, उसी का नाम 'ध्यान' है। बुद्धि के प्रवाहरूप ध्यान का जो आलम्बन या आश्रय है, उसी को साधु पुरुष –ध्येय' कहते हैं। स्वयं साम्ब सदाशिव ही वह ध्येय हैं। मोक्ष–सुख का पूर्ण अनुभव और अणिमा आदि ऐश्वर्य उपलब्धि – ये पूर्ण शिव ध्यान के साक्षात् प्रयोजन कहे गये हैं। ध्यान से सौख्य और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है, इसलिए मनुष्य को सब कुछ छोड़कर ध्यान में लग जाना चाहिए। बिना ध्यान के ज्ञान नहीं होता और जिसने योग का साधन नहीं किया है, उसका ध्यान सिद्ध नहीं होता। जिसे ध्यान और ज्ञान दोनों प्राप्त हैं, उसने भवसागर को पारकर लिया। समस्त उपाधियों से रहित, निर्मल ज्ञान और एकाग्रता पूर्ण ध्यान – ये योगाभ्यास से युक्त योगी को ही सिद्ध होते हैं। जिनके सारे पाप नष्ट हो गये हैं, उन्हीं की बुद्धि ज्ञान और ध्यान में लगती है। जिनकी बुद्धि पाप से दूषित है, उनके लिए ज्ञान और ध्यान की बात भी अत्यन्त दुर्लभ है। जैसे प्रज्वलित हुई आग सूखी और गीली लकड़ी को भी जला देती है, उसी प्रकार ध्यानाग्नि शुभ और अशुभ कर्मों को भी क्षणभर में नष्ट कर देती है। जैसे बहुत छोटा दीपक भी महान अन्धकार का नाश कर देता है, इसी तरह थोड़ा–सा योगाभ्यास भी महान् पाप का विनाश कर डालता है। श्रद्धापूर्वक क्षणभर भी परमेश्वर का ध्यान करने वाले पुरुष को वह महान् श्रेय प्राप्त होता है, जिसका कहीं अन्त नहीं है।

ध्यान के समान कोई तीर्थ नहीं है, ध्यान के समान कोई यज्ञ नहीं है, इसलिए ध्यान अवश्य करें। अपने आत्मा एवं परमात्मा का बोध प्राप्त करने के कारण योगीजन केवल जल से भरे हुए तीर्थों और पत्थर एवं मिट्टी की बनी हुई देवमूर्तियों का आश्रय नहीं लेते (वे आत्मतीर्थ में अवगाहन करते और आत्मदेव के ही भजन में लगे रहते हैं)। जैसे अयोगी पुरुषों को मिट्टी और काठ की बनी हुई स्थूल मूर्तियों का प्रत्यक्ष होता है, उसी तरह योगियों को ईश्वर के सूक्ष्म स्वरूप का प्रत्यक्ष होता है। जैसे राजा को अपने अन्तःपुर में विचरने वाले स्वजन एवं परिजन प्रिय होते हैं बाहर के लोग उतने प्रिय नहीं होते, उसी प्रकार भगवान शंकर को अन्तःकरण में ध्यान लगाने वाले भक्त ही अधिक प्रिय हैं, बाह्य उपचारों का आश्रय लेने वाले कर्मकाण्डी नहीं। जैसे लोक में यह देखा गया है कि बाहरी लोग राजा के भवन में राजकीय पुरुषोचित फल का उपभोग नहीं कर पाते, केवल अन्तःपुर के लोग ही उस फल के भागी होते हैं, उसी प्रकार यहाँ बाह्यकर्मी पुरुष उस फल को नहीं पाते जो ध्यानयोगियों को सुलभ होता है।

ज्ञानयोग की साधना के लिए उद्यत हुआ पुरुष यदि बीच में ही मर जाय तो भी वह योग के लिए उद्योग करने मात्र से रुद्र लोक में जायेगा। वहाँ दिव्य सुख का उपभोग करके वह फिर योगियों के कुल में जन्म लेगा और पुनः ज्ञानयोग को पाकर संसार–सागर को लाँघ जायेगा।

योग का जिज्ञासु पुरुष भी जिस गति को पाता है, उसे यज्ञकर्ता सम्पूर्ण महायज्ञों का अनुष्ठान करके भी नहीं पाता करोड़ों वेदवेत्ता द्विजों की पूजा करने से जो फल मिलता है, वह एक शिवयोगी को भिक्षा देने मात्र से प्राप्त हो जाता है। यज्ञ, अग्निहोत्र, दान, तीर्थसेवन और होम– इन सभी पुण्यकर्मों के अनुष्ठान से जो फल मिलता है वह सारा फल शिवयोगियों को अन्न देने मात्र से प्राप्त हो जाता है। जो मूढ़ मानव शिवयोगियों की निन्दा करते हैं, वे श्रोताओं सहित नरक में पड़ते हैं और प्रलयकाल तक वहीं रहते हैं। श्रोता के होने पर ही कोई शिवयोगियों की निन्दा का वक्ता हो सकता है, इसलिए महापुरुषों के मत में उस निन्दा को सुनने वाला भी महान पापी और दण्डनीय है। जो लोग सदा भक्तिभाव से शिवयोगियों की सेवा करते हैं, वे महान् भोग पाते और अन्त में शिवयोग की भी उपलब्धि कर लेते हैं। इसलिए भोगार्थी मनुष्यों को चाहिए कि वे रहने को स्थान, खान–पान, शय्या तथा ओढ़ने–बिछाने की सामग्री आदि देकर सदा शिवयोगियों का सत्कार करें। योग धर्म संसार – अत्यन्त प्रबल है, अतः पाप रूपी मुद्गरों से उसका भेदन नहीं हो सकता। योगधर्म और पाप मुद्गर में उतना ही अन्तर समझना चाहिए, जितना वज्र और तन्दुल में, अतः योगीजन पापों और ताप–समूहों में उसी तरह लिप्त नहीं होते, जैसे कमल का पत्ता पानी में।

शिवयोगपरायण मुनि जिस देश में नित्य निवास करता है, वह देश भी पवित्र हो जाता है। फिर उसकी पवित्रता के विषय में कहना ही क्या। अतः चतुर एवं विद्वान् पुरुष सब कृत्यों को छोड़कर सम्पूर्ण दुःखों से छुटकारा पाने के लिए शिवयोग का अभ्यास करें। जिसका योगफल सिद्ध हो गया है, वह योगी यथेष्ट भोगों को भोगकर समस्त लोकों की हित–कामना से संसार में विचरे अथवा अपने स्थान पर ही रहे या विषय-सुख को अत्यन्त तुच्छ समझकर छोड़ दे और वैराग्ययोग से स्वेच्छापूर्वक कर्मों का परित्याग कर दे।

जो मनुष्य बहुत से अरिष्ट देखकर अपनी मृत्यु को निकट जान ले, उसे योगानुष्ठान में संलग्न हो शिवक्षेत्र का आश्रय लेना चाहिए। वह मनुष्य यदि धीरचित्त होकर वहीं निवास करता रहे तो रोग आदि के बिना भी स्वयं प्राणों का परित्याग कर सकता है। अनशन करके, शिवाग्नि में शरीर की आहुति देकर अथवा शिवतीर्थों में अवगाहन करते हुए अपने शरीर को उन्हीं के जल में डालकर शिवशास्त्रोक्त विधि से जो अपने प्राणों का त्याग करता है, वह तत्काल मुक्त हो जाता है – इसमें अन्यथा विचार करने की आवश्यकता नहीं है। अथवा जो रोग आदि से विवश होकर शिवक्षेत्र की शरण लेता है, उसकी भी यदि वहाँ मृत्यु हो जाय तो वह इसी प्रकार मुक्त हो जाता है – इसमें संशय नहीं है। इसलिए लोग अनशन आदि से शिवक्षेत्र में श्रेष्ठ मरण की कामना करते हैं, क्योंकि शास्त्र पर विश्वास करके स्थिर हुए मन से उनके द्वारा इस तरह की मृत्यु स्वीकार की जाती है। जो शिव के लिए अथवा शिव भक्तों के लिए प्राण त्याग करता है, उसके समान दूसरा कोई मनुष्य मुक्ति मार्ग पर स्थित नहीं है। इस कारण संसार मण्डल से उसकी शीघ्र मुक्ति हो जाती है। इनमें से किसी एक उपाय का किसी तरह भी अवलम्बन करके

अथवा विविदित शुद्धबुद्धि को प्राप्त होकर यदि कोई मनुष्य मरता है तो उसका अन्य पशुओं – प्राणियों के समान यहाँ और्ध्वदैहिक संस्कार नहीं करना चाहिए। विशेषतः उसके पुत्र आदि को उसके मरने से अशौच की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे पुरुषों के मृत शरीर को धरती में गाड़ दे या पवित्र अग्नि से जला दे या शिवस्वरूप जल में डाल दे अथवा काठ या मिट्टी के ढेले की भाँति कहीं भी फेंक दे, सब उसके लिए बराबर है।

यदि ऐसे पुरुष के उद्देश्य से भी कोई कर्म करने की इच्छा हो तो दूसरों का कल्याण ही करे और अपनी शक्ति के अनुसार शिव भक्तों को तृप्त करे। उसके धन को शिवभक्त ही ग्रहण करे। यदि उसकी संतति शिवभक्त हो तो वह भी ग्रहण कर सकती है। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका धन भगवान शिव को समर्पित कर दे। परंतु उसकी पशु–सन्तति (शिव–भक्तिहीन सन्तान) उस धन को ग्रहण न करे।

*''तुम्हारे रोने-चिल्लाने से प्रारब्ध का दुःख भोग मिट नहीं जायगा और बड़ी भारी चाह तथा चिन्ता करने से भोग-सुख मिल नहीं जायगा; पर यदि तुम दुःख में सुख तथा लाभ-बुद्धि कर लोगे और सुख में दुःख तथा हानि-बुद्धि कर लोगे, जो यथार्थ है तो तुम्हें सांसारिक दुःखों की प्राप्ति में उद्वेग या क्लेश नहीं होगा और सुखों की स्पृहा या अभिलाषा नहीं होगी। अपने-आप आने पर तुम दोनों में ही निर्विकार और प्रसन्न रहोगे।''*

# योगभ्रष्ट योगी की कैसी गति? समाधान

— जयनारायण राय, आजमगढ़

अर्जुन ने श्री कृष्ण से सुना कि अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को वश में किया जा सकता है। यह भी उसने जाना कि संयमी, जो उपाय जान कर यत्न करता है, योग की उस स्थिति को प्राप्त करने में समर्थ होता है। पर अर्जुन के मन में प्रश्न उठता है कि कोई योग साधना में निरन्तर नहीं लगा रह सकता है, वह मन के न लगने के कारण योग से उखड़ भी सकता है। ऐसी दशा में स्वाभाविक ही वह योग के लक्ष्य से च्युत हो जायेगा। किन्तु उसकी श्रद्धा उस मार्ग में बनी हुई है। ऐसा प्रयत्न छोड़ देने वाला व्यक्ति किस गति को प्राप्त होता है? अर्जुन निम्न श्लोकों में श्री कृष्ण भगवान से स्पष्टीकरण चाह रहे हैं।

**अयति : श्रद्धयोपेत्तो योगच्चलित मानस :।**

**अप्राप्य योग संसिद्धि कां गतिं कृष्ण गच्छति।। 6/37**

**कच्चिन्नोमय विभ्रष्ट श्छिन्नाभ्रमिव नश्यति।**

**अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मत्व : पथि।। 6/38**

**एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषत :।**

**त्वदन्य : संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते।। 6/39**

ब्रह्म प्राप्ति के मार्ग में मोहित हो ने के कारण जो भटक गया है, वह न तो योग मार्ग का राही रहा और न दुनिया का ही बन कर रह पाया। संसार छोड़कर योग का रास्ता पकड़ा था। अब योग का पथ त्याग देने के कारण संसार और योग दोनों से विमुख हो जाने के फलस्वरूप, कहीं वह कटे हुए बादल के छोटे टुकड़े की तरह नष्ट तो नहीं हो जाता। यह अर्जुन का प्रश्न है। उसका यह संशय बहुत सही है। योग का रास्ता नहीं है। उसमें बड़ी फिसलन है। पग–पग पर मन कठिनाइयाँ खड़ी करता रहता है। अर्जुन अपने इस संशय का निरसन श्री कृष्ण से चाहता है। उसे पूरा विश्वास है कि श्री कृष्ण पूरी तरह से अर्जुन के संशय को मिटाने में समर्थ है और यह भी विश्वास है कि श्री कृष्ण को छोड़कर अन्य कोई भी व्यक्ति उसके इस संशय को दूर नहीं कर सकता।

श्री कृष्ण भगवान् ने अर्जुन के प्रश्न का उत्तर निम्न श्लोक में देते हैं–

**पार्थ नैवेह नामुक विनाशस्तस्य विद्यते।**

**न हि कल्याण कृत्कश्चिद्दुर्गति तात गच्छति।। 6/40**

अर्जुन जितनी स्पष्टता से उत्तर की अपेक्षा करता रहा, श्री कृष्ण भगवान् वैसा ही

उत्तर प्रदान करते है। उनके उत्तर में कहीं पर कोई सन्दिग्धता नहीं है। अर्जुन को लगा था कि योग साधना में यदि कोई यथोचित संयम के अभाव में 'न टिक' पाया तो उसके लोक-परलोक दोनों कहीं नष्ट न हो जाये। श्री कृष्ण कहते है – नहीं, उसका कहीं विनाश नहीं है, कल्याण करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है। श्री कृष्ण भगवान् अर्जुन को गीता के अध्याय 2 के 40 श्लोक में बता चुके हैं स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् अर्थात् इस धर्म (योग, निष्काम कर्मयोग) का थोड़ा सा भी अनुष्ठान महान् भय से रक्षा करता है। उक्त श्लोक में 'कल्याणकृत्, शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ यह शब्द आत्म कल्याण अथवा विवक्षित है। इसका उत्तर है – हाँ। जो अपने कल्याण में लगा है, वह प्रकारान्तर से समाज का भी कल्याण करता है। योग साधन में लगा हुआ पुरुष दुराचारी नहीं होता, वह दूसरों के लिए सन्ताप का कारण नहीं बनता। अर्जुन ने पूछा था कि ऐसा व्यक्ति योग की परम सिद्धि को न पाकर किस गति को प्राप्त होता है? इससे ध्वनित होता है कि अर्जुन उसकी मृत्युपरान्त गति के सम्बन्ध में ही पूछ रहा है– मरने के पश्चात् उसकी किसी प्रकार दुर्गति तो नहीं होती। श्री कृष्ण भगवान् अर्जुन को आश्वस्त करते हैं कि इस लोक या परलोक में उसका कहीं विनाश नहीं है, उसकी कोई दुर्गति नहीं होती।

योगभ्रष्ट योगी का विनाश नहीं होता, पर मरणोपरान्त उसकी गति क्या होती है? इस प्रश्न का उत्तर श्री कृष्ण भगवान् ने अगले पांच श्लोक में प्रदान करते हैं–

**प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वती : समा :।**

**शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते।। 6/41।।**

'योगभ्रष्ट' वह है, जो यथोचित मन: संयम के अभाव में या अन्य किसी कारणवश जीवन के अन्तकाल में योग के लक्ष्य से विचलित हो गया हो, पर उसके मन में योग के प्रति श्रद्धा बनी रही हो। वह जब मृत्यु को प्राप्त होगा, तो स्वर्गादि उत्तम लोकों को जायेगा, जो पुण्यवालों को प्राप्त होता है। इस मृत्यु लोक से ऊपर ब्रह्मलोक तक के सभी लोक पुण्यवानों के लोक कहे जाते हैं, क्योंकि व्यक्ति मृत्यु के पश्चात् अपने किये पुण्यों के अनुसार इन लोकों को प्राप्त होता है। वहाँ वह योगभ्रष्ट बहुत काल तक निवास कर भोगों का सुख भोगता है और जब उसके पुण्यों का फल समाप्त होता है, तब वह शुद्ध आचरण वाले श्रीमन्तों के घर जन्म लेता है।

श्री कृष्ण भगवान् अगले श्लोक में स्पष्ट करते हैं कि आसक्त रहित उच्च श्रेणी का योगभ्रष्ट निर्धन कुल में 'बुद्धियोगियों के यहाँ जन्म धारण करता है–

**अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।**

**एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्।। 6/42।।**

श्लोक में अथवा, आचार्य शंकर अपने भाष्य में लिखते है – अथवा श्रीमतां कुलाद् अन्यस्मिन् योगिनाम् एवं दरिद्राणम् कुले भवति जायते श्रीमतां बुद्धिमताम्' – अथवा श्रीमानों के कुल से अन्य जो बुद्धिमान् दरिद्र योगियों का कुल है उसमें जन्म लेता है।

योगभ्रष्ट चाहे शुचि–पवित्र धनाढ्य कुल में जन्म ले या दरिद्र ज्ञानवान् योगी कुल में वह जन्म लेकर करता क्या है, यह नीचे श्लोक में स्पष्ट किया गया है –

**तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्।**

**यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन।।6/43**

धनवान कुल और दरिद्र कुल में अथवा सन्तों एवं महापुरुषों के यहाँ कुपुत्र जन्म लेते देखे गये हैं पर जब योगभ्रष्ट उन लोगों के यहाँ जन्म लेता है, तो वह अपने पूर्व जन्म में किये अभ्यास से प्राप्त बुद्धि को – संस्कारों को प्राप्त हो जाता है। पिछले जन्म में उसने साधना का सूत्र जहां पर छोड़ा था, वह सूत्र वहीं से फिर पकड़ लेता है और साधना में सिद्धि के लिए पहले से भी बढ़ कर प्रयत्न करने लगता है।

प्रश्न किया जा सकता है कि क्या योगभ्रष्ट का अगला जन्म इस प्रकार साधना में लगेगा? वह विषयभोग की ओर खींच कर भी तो अपने जीवन को गवा सकता है। इसके उत्तर में कहते हैं – नहीं, पर ऐसा योग भ्रष्ट अपने पूर्वजन्म में निर्दिष्ट किये हुए साधना पथ पर ही आगे बढ़ता है। जैसा कि नीचे के श्लोक में स्पष्ट है –

**पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः।**

**जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।। 6/44**

अर्थात् वह उसी पहले (पूर्वजन्म) के अभ्यास द्वारा (मानो) बरबस ही (योग साधन की ओर) खींचा जाता है। निःसन्देह (इस) योग का जिज्ञासु भी वेद (में कहे हुए सकाम कर्मों के फल) को पार कर जाता है।

*जिसके हृदय में सदा सत्य, न्याय, प्रेम, क्षमा, धैर्य, ईमानदारी, संतोष, शान्ति त्याग और आनन्द के शुभ भाव विराजते – क्रीड़ा करते हैं, उसका जीवन भी वैसा ही बन जाता है। इसलिए निरन्तर इस प्रकार के शुभ विचारों का ही चिन्तन करो।*

# साधक साधना और साध्य का सम्बन्ध

– त्यागमूर्ति गोस्वामी श्री गणेशदत्त जी महाराज

साधक, साधना और साध्य का परस्पर वही सम्बन्ध है जो कि ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का है। साधक भक्त है, साधना उसकी भक्ति है और साध्य उसका आराध्य भगवान् है।

साधना के इच्छुक साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति और मुमुक्षुता से सम्पन्न हो और सांसारिक विषय–वासना, राग–द्वेष, काम, क्रोध, मोह आदि के कीचड़ से बाहर निकल गया हो। इसमें संदेह नहीं कि इनसे बाहर निकलना भी एक महान साधना है, जिसमें बहुत ही थोड़े व्यक्ति सफल हो सकते हैं।

साध्य तक पहुँचने के लिए साधक को दो बातों की आवश्यकता होती है – पहली अपने हृदय में उत्कृष्ट अभिलाषा का होना और दूसरी मन्त्र–शक्ति का आश्रय।

साधक के हृदय में साध्य की प्राप्ति के लिए इतनी अधिक उत्कट अभिलाषा होनी चाहिए, जिसके सामने अन्य सभी सांसारिक इच्छायें–अभिलाषायें समाप्त हो जायें। प्रायः कहा जाता है कि साधक के हृदय में साध्य की प्राप्ति के लिए उसी प्रकार की अभिलाषा होनी चाहिए, जैसी किसी पुरुष के हृदय में अपने प्रियतम को प्राप्त करने के लिए होती पर मैं समझता हूँ, साधक के हृदय में इससे भी अधिक उत्कट अभिलाषा का होना आवश्यक है। ऐसी अभिलाषा जो हृदय में साध्य की प्राप्ति के लिए बेचैनी और तड़प पैदा कर दे, जिससे साधक साध्य के ध्यान में ही पागल हो जाय, सिद्धि का लक्षण है।

एक बार किसी शिष्य ने अपने गुरुजी से पूछा कि महाराज! भगवान् की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? गुरुजी ने कहा – 'कुछ समय के बाद बताऊंगा।' दोनों नदी में स्नान करने चले गये। जब शिष्य स्नान करने के लिए नदी के मध्य में पहुँचा तो गुरुजी ने उसके सिर पर जोर से पैर रखकर पानी के नीचे दबा दिया। कुछ ही पलों में शिष्य घबड़ा गया और छटपटाने लगा। अन्त में कुछ देर तक बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् पानी के बाहर निकल सका। उस समय उससे गुरुजी ने पूछा – 'जिस समय तुम पानी में डूबे जाते थे, तुम्हारे हृदय में क्या विचार आते थे?' शिष्य ने उत्तर दिया – 'मेरे हृदय में केवल पानी से ऊपर निकलने की इच्छा थी, उसी के लिए मैं तड़प रहा था, मुझे और किसी वस्तु या बात का जरा भी ध्यान न था।' गुरुजी ने कहा – 'बस! जब इस प्रकार की उत्कट अभिलाषा और छटपटाहट भगवान् की प्राप्ति के लिए होती है, तभी भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।'

अशोकवाटिका में पहुँचकर जब श्री हनुमान जी ने सीताजी को श्री रामचन्द्र जी के लिए संदेश देने को कहा तो सीता जी ने अपनी दशा यह कहकर व्यक्त की–

जिमि मनि बिनु व्याकुल भुजंग,

जल बिनु व्याकुल मीन।

तिमि देखे रघुनाथ बिनु,

मैं तड़फत हूँ दीन।।

बिना मणि के सर्प जिस प्रकार तड़पने लगता है या बिना जल के मछली जिस प्रकार छटपटाती है, उसी प्रकार की तड़प और छटपटाहट साधक के हृदय में होनी आवश्यक है।

उत्कट अभिलाषा के अतिरिक्त साधक को साध्य तक पहुँचने के लिए तीव्र संकल्प भावना या मन्त्राश्रय की आवश्यकता है। वह मन्त्र के मोहन, वशीकरण आदि प्रयोगों के द्वारा अथवा केवल एक ही मन्त्र का दृढ़ विश्वास से जप करता हुआ सफल हो सकता है। उदाहरण के लिए यदि 'ओम्' – इस महामन्त्र का जप करता हुआ साधक अपने हृदय में यह ध्यान करता रहे कि – मैं अ–उ–म्, सत्–चित्–आनन्द हूँ। मैं स्थूल–सूक्ष्म–कारण, मन–बुद्धि–अहंकार, जाग्रत–स्वप्न–सुषुप्ति, प्राण–अपान–उदान–व्यान–समान से परे साक्षी सच्चिदानन्द स्वरूप पूर्ण ब्रह्म हूँ। काम, क्रोध और मोह मुझ तक पहुँच भी नहीं सकते। मैं सर्व प्रकाश सर्वज्ञान और सर्व आनन्द का घर हूँ। मैं दृश्य और द्रष्टा से परे हूँ, प्रकृति का अधिष्ठाता हूँ। सोऽहम्, सोऽहम्। मैं भगवान ही हूँ और कुछ नहीं।' मन्त्राश्रय लेकर इस प्रकार की भावना करता हुआ साधक साध्य तक पहुँच सकता है।

साध्य तक पहुँचने के लिए एकवृत्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। एक बार गुरु द्रोणाचार्य जी ने अपने शिष्यों की परीक्षा के लिए ऊँचे पीपल की शाखा के ऊपर एक कृत्रिम पक्षी रख दिया और उसके मस्तक पर एक काला बिन्दु लगा दिया। उस बिन्दु पर बाण मारने के लिए उन्होंने अपने शिष्यों से कहा। जब दुर्योधन लक्ष्य–भेदन के लिए आगे आये तो गुरुजी ने पूछा– 'तुम्हें हम सब लोग पीपल का वृक्ष, पक्षी और उसके सिर पर बिंदु दिखाई देता है?' दुर्योधन ने उत्तर दिया– 'जी हाँ, मैं आपको, अपने सहपाठियों को, पीपल को और उसके ऊपर पक्षी को तथा उसके सिर पर काले बिन्दु को – सबको अच्छी तरह से देख रहा हूँ।' गुरुजी ने कहा – 'तुम पीछे चले जाओ, तुमसे लक्ष्यभेदन नहीं होगा।' इसी प्रकार एक–एक करके सभी शिष्यों से गुरुजी ने यही प्रश्न पूछा और उन्होंने प्रायः यही उत्तर दिया। जब अर्जुन की बारी आई तो उससे भी यही प्रश्न पूछा गया – उसने उत्तर दिया, 'गुरुजी! मुझे न आप दिखाई देते हैं, न अपने सहपाठी। पीपल का पेड़ और पक्षी मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देता। केवल एक काला बिन्दु मेरी दृष्टि में आता है। बाकी सब अन्धकार ही अन्धकार प्रतीत होता है।' गुरुजी ने कहा – 'बस! मैं समझ गया कि तुम लक्ष्य–भेदन कर सकते हो।'

*(शेष पेज नं. 34 पर)*

# गोरखपुर में योग प्रचार कार्यक्रम

लेखक – रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी गोरखपुर में गोरखनाथ मन्दिर में ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजय नाथ जी महाराज के 42 वीं पुण्य तिथि के अवसर पर सप्त दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन रखा गया। इस कार्यक्रम में श्री सिद्धगुफा सवांई धाम से आचार्य डॉ. दासलाल जी महाराज गोरखनाथ मठ पधारे। कार्यक्रम में 13 सितम्बर को दस बजे आचार्य जी गोरखपुर पहुँच गये थे। दोपहर बाद 3 बजे से 4: 30 बजे तक गोरखनाथ योग प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षुओं को आचार्य जी ने सम्बोधित किया। योग आसनों के अतिरिक्त आचार्य जी ने सूत्र नेति का प्रदर्शन कराया। आजकल लोग सूत्र नेति के नाम पर रबड़ नेति कराते हैं जिसका अपेक्षित लाभ नहीं हो पाता है। प्रशिक्षुओं के लिए व्याख्यान के क्रम में डॉ. विजय सिंह जी ने शैव योग पर अपने विचार प्रकट किये।

13 सितम्बर को दिग्विजयनाथ स्मृति सभागार में शाम 5 बजे से राष्ट्रीय कार्यक्रम में गौ रक्षा एवं गंगा रक्षा पर सम्मेलन हुआ। इसमें मुख्य प्रवक्ता के रूप में साध्वी उमा भारती ने गौमाता के संवर्द्धन एवं संरक्षण पर विशेष बल दिया। 14 सितम्बर को योग सम्मेलन था। इसमें 'आचार्य श्री' मुख्य वक्ता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उन्होंने अपने प्रवचन में योग का स्वरूप, परिभाषा तथा इससे प्राप्त मन की एकाग्रता जन्य विभूतियों का वर्णन करते नाथ योगियों के दिव्य चरित्रों का उल्लेख किया। इसी अमर विद्या के कारण ही भारत विश्वगुरु कहलाता है। इन्होंने कहा कि योग केवल प्रवचन का विषय नहीं है इसे तो जीवन में उतारने की आवश्यकता होती है। धारणा, ध्यान के माध्यम से इसे मन, बुद्धि में आवेशित किया जाता है। 'विद्या सा या विमुक्तये' विद्या वही सार्थक है जिससे बन्धन कटता हो, क्लेश दूर होकर मुक्ति मिलती हो।

आचार्य श्री ने गुरुदेव का 17-18 वर्ष सान्निध्य प्राप्त किया, इस कारण से योग

योग प्रचार कार्यक्रम - गोरखपुर

योगी आदित्यनाथ जी, स्वामी चिन्मयानन्द जी (हरिद्वार), महन्त अवेद्य नाथ जी महाराज, योगी दासलाल जी (आगरा), वेदान्ती जी, आचार्य धर्मेन्द्र जी (जयपुर) व योगी शिवनाथ जी (उड़ीसा) (दायें से)

सिद्धान्तों का साङ्गोपाङ्ग ज्ञान इनके चित्त में विद्यमान है। इस प्रकार से आचार्य जी ने गोरखनाथ मठ में आकर श्री सिद्धगुफा का प्रतिनिधित्व किया है। श्री गुरुदेव जी भी यहाँ दो-तीन बार पधार चुके हैं तथा महन्त अवेद्य नाथ जी भी श्री सिद्ध गुफा कई बार आ चुके हैं। आचार्य जी के यहाँ पधारने से यहाँ के गुरु भाई भी आल्हादित और उपकृत हुए हैं। वस्तुतः आचार्य जी का गोरखपुर आगमन हम लोगों के लिए गौरव की बात है।

## बन्धन का स्वरूप

अति संक्षिप्त रूप में बन्धन का कारण है जीवात्मा का परमानन्द स्वरूप 'परमात्मा' से मुख मोड़कर, दुःखदाई इन प्राकृतिक पदार्थों में आसक्त हो जाना।

उपर्युक्त कथन इस प्रकार अधिक स्पष्ट हो जाता है–

परमात्मा और जीवात्मा इन दो चेतनों के अतिरिक्त यह समस्त ब्रह्माण्ड त्रिगुणात्मक जड़ प्रकृति के संयोग से बना है। अलिंग पुरुष और प्रकृति के अतिरिक्त यह समस्त कार्य जगत अनित्य है। परम प्रत्यक्ष दर्शी ऋषियों की खोज के अनुसार प्रकृति के समस्त नाम रूप विकारों को कार्य कारण रूप से प्रत्यक्ष कराने वाला करण मानव का अन्तःकरण चतुष्टय है। आकृत्या समान होते हुए भी त्रिगुणों की न्यूनाधिकता से बने होने के कारण प्रकृत्या विभिन्न स्वभाव वाले भी हैं। अतः निज स्वभावानुसार विविध प्रकार के कर्म आसक्तिपूर्ण होने के कारण बन्धन के और पुनः इनमें अनासक्ति हो जाने से मोक्ष के हेतु बन जाते हैं। अतः शास्त्र में 'त्रिविधो बन्धः' और 'त्रिविधो मोक्षः' ये वचन मिलते हैं।

– *अनासक्तियोग*

(पेज नं. 31 का शेष)

ठीक इसी प्रकार साध्य की प्राप्ति के लिए साधक की दृष्टि होनी चाहिए। उसके लिए संसार की सारी क्रियायें, सारी घटनायें शून्य हो जानी चाहिए। उसके सम्मुख केवल साध्य के अतिरिक्त किसी भी वस्तु का चित्र नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार लक्ष्य तभी बेधा जा सकता है, जब तीर चलाने वाला, तीर और लक्ष्य बिल्कुल एक सीध में हों। इसी प्रकार साधक, साधना और साध्य में भी एक–वृत्ति का होना अत्यन्त आवश्यक है। जिस समय साधक अपने अन्तर्गत साध्य के लिए उत्कट अभिलाषा और तड़प पावे, जिस समय उसे मन्त्र और मन्त्रेश्वर का ऐक्य प्रतीत हो। जिस समय उसे अपने में, साधना में और साध्य में एक ही वृत्ति दिखाई दे, उस समय उसे समझ लेना चाहिए कि अब वह और साध्य एक हो गये हैं। जीव ब्रह्म में मिल गया है। भक्त को भगवान् ने अपना लिया है।

*– उस परमात्मा का बहुत–बहुत शुक्रिया अदा करना है, जिसने हमें यह बहुमूल्य मानव–शरीर दिया है। वरना पशु–पक्षी की योनि मिलने पर किसी अन्य के आधिपत्य को स्वीकारना पड़ता। इस शुभ अवसर को पाकर कितना अच्छा होगा कि हम स्वयं की पहचान कर लें।*

*– इस शरीर को पालने–चलाने के लिए कितने साधन – प्रयास की आवश्यकता है? वैसे तो बचपन, यौवन और बुढ़ापा स्वतः ही आ जाते हैं। फिर भी अपने प्रयासों से व्यक्ति इसे सदा बनाये रखना चाहता है। पर वास्तव में बनाये रखने वाली चीज क्या है, इसे तो कोई बिरला ही जान पाता है।*

*(एक संत अमृत – वाणी)*

# स्वस्थ रहने की रामबाण दवा

*(गतांक से आगे)*

**व्यायाम तथा वायुसेवन** – शरीर को स्वस्थ रखने के लिए, कार्य करने की सामर्थ्य बनाये रखने के लिए, पाचनक्रिया तथा जठराग्नि को ठीक रखने के लिए,शरीर को सुगठित, सुदृढ़ और सुडौल बनाने की दृष्टि से, अपने आयु, बल, देश और काल के अनुरूप नियमित रूप से योगासन अथवा व्यायाम अवश्य करना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति सामान्यतः बीमार नहीं होते और उन्हें औषधिसेवन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती।

सुबह और शाम को नित्य खुली, ताजी और शुद्ध हवा में अपनी शक्ति के अनुसार थकान न मालूम होने तक साधारण चाल से घूमना चाहिए। नियमपूर्वक कम–से–कम दो–तीन किलोमीटर तक घूमना चाहिए। प्रौढ़ावस्था में टहलना भी एक प्रकार का व्यायाम है। नियमपूर्वक घूमने के व्यायाम से और शुद्ध वायुसेवन से शरीर को बहुत लाभ पहुँचता है।

**अभ्यङ्ग (तेल–मालिश)**– जरा, श्रम तथा वात के विनाशार्थ और शरीर की दृढ़ता, पुष्टि, दृष्टिवृद्धि के लिए नित्य तेल की मालिश करनी चाहिए। सिर, कान तथा पाँव के तलवों में तेल की मालिश का विशेष लाभ है। कान में तेल डालने से कान के रोग, ऊँचा सुनना, बहरापन आदि विकार नहीं होते। सिर की मालिश से कानों को और कानों की मालिश से पाँवों को लाभ पहुँचता है तथा पाँवों की मालिश से नेत्ररोगों का तथा नेत्रों के अभ्यङ्ग से दन्तरोगों का शमन होता है।

रोज सारे बदन में तेल लगाने पर बड़ा लाभ होता है। गले के नीचे तक सरसों का तथा मस्तक पर तिल आदि का तेल लगावें। सिर का ठंडा रहना और पैर का गरम रहना अच्छा है। एकादशी, पूर्णिमा, अमावस्या, सूर्य की संक्रान्ति, व्रत तथा श्राद्धादि के दिन तेल न लगावें।

**क्षौर–क्रिया** – एकादशी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा, सूर्यसंक्रान्ति, शनिवार, मंगलवार, वृहस्पतिवार, व्रत तथा श्राद्धादि दिनों को छोड़कर किसी भी दिन क्षौर, दाढ़ी, नखच्छेदन आदि कराया जा सकता है। सामान्यतः सोमवार, बुधवार और शुक्रवार क्षौरकर्म के लिए विशेष रूप से प्रशस्त हैं। परंतु एक संतान वाले व्यक्ति को सोमवार को क्षौर नहीं कराना चाहिए।

**स्नान** – व्यक्ति को प्रतिदिन मन्त्रपूत स्वच्छ जल से स्नान करना चाहिए। तभी वह मन्त्रजप, संध्यावन्दन, स्तोत्र आदि पाठ तथा भगवद्दर्शन, चरणामृत ग्रहण करने का अधिकारी बनता है। गंगा आदि पवित्र नदियों में, बहते हुए नद अथवा निर्मल तालाब में स्नान करना उत्तम

पड़ता है।

शरीर को अँगोछे और हाथ से मल–मलकर खूब नहाना चाहिए। नहाते समय ऐसा निश्चय करें कि मेरे शरीर के मैल के साथ ही मन का मैल भी धुल रहा है और इस समय भगवान का नामोच्चारण अवश्य करते रहना चाहिए। स्नान करते समय पहले मस्तक पर जल डालना चाहिए। ज्वर, अतिसार आदि रोगों में, पसीने में, दौड़कर आने पर तथा भोजन के तुरंत बाद नहीं नहाना चाहिए। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व स्नान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। स्नान से जठराग्नि बढ़ती है। आयु, बल और पुष्टि की वृद्धि होती है। खुजली, मल, पसीना तथा प्यास, दाह, दुःस्वप्न आदि नष्ट हो जाते हैं। रूप, कान्ति, तेज आदि की वृद्धि होती है।

स्नान करके अंग पोंछने के बाद धोया हुआ शुद्ध सफेद कपड़ा पहनें। पूजा के समय ऊनी तथा जिसमें हिंसा न होती हो, ऐसा वस्त्र पहना उत्तम है। दूसरे का पहना हुआ कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। लुंगी (बिना लाँग का वस्त्र) नहीं पहनना चाहिए। 'मुक्तकक्षो महाधमः', बल्कि धोती धारणकर संध्या–पूजन आदि कर्म करने चाहिए।

नहाने के बाद सिर के केशों को कंघी से ठीक कर लें, जिसमें कोई जीव–जन्तु या कूड़े का कण सिर पर न रहने पावे। सिर पर कंघी करने से बुद्धि का विकास होता है।

**नित्य अभिवादन** – घर में माता–पिता, गुरु, बड़े भाई आदि जो भी अपने से बड़े हों, उनको नित्य नियमपूर्वक प्रणाम करें। नित्य बड़ों को प्रणाम करने से आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है–

**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।**
**चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।**

(मनुस्मृति 2/121)

शिखा (चोटी) और सूत्र (जनेऊ) के बिना जो देव–कार्य किये जाते हैं, वे सदा निष्फल होते हैं–

**'विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्।'**

**तिलकधारण** – संध्या–वन्दन तथा पूजन आदि के पूर्व मस्तक पर भस्म, चन्दन या कुंकुम से अपने–अपने सम्प्रदाय के अनुसार त्रिपुण्ड्र अथवा ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि तिलक करना चाहिए। तिलक धारण करने की बड़ी महिमा है। तिलक के न करने पर स्नान, दान, तप, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण – ये सभी कर्म निष्फल होते हैं – 'भस्मी भवति तत्सर्वम्।'

**संध्या, तर्पण एवं इष्टदेव का पूजन** – द्विजको यथासाध्य त्रिकाल (प्रातः, मध्यान्ह तथा सायं) – संध्या करनी चाहिए। कम–से–कम दो काल की संध्या तो अवश्य करनी ही चाहिए। जो द्विज प्रतिदिन प्रमादवश संध्या नहीं करता, वह महान् पापी माना जाता है और उसे भयानक नरकयातनायें भोगनी पड़ती है। संध्या के बाद कम–से–कम एक माला –गायत्रीमन्त्र

का जप करना चाहिए। देवता, ऋषि और पितरों की तृप्ति के लिए प्रतिदिन तर्पण करें। नित्य अपने इष्टदेव की (मानस एवं बाह्य) पूजा तथा स्तोत्रपाठ आदि करने चाहिए। जिनको संध्या, गायत्री करने का अधिकार नहीं है, ऐसे लोग नित्य नियमपूर्वक अपने–अपने इष्टदेव की पूजा–प्रार्थना अवश्य करें। पूजा की पूर्णता चित्त की एकाग्रता पर निर्भर होती है। अतः मन को सब तरफ से हटाकर एकाग्रचित हो प्रभु में लगाना चाहिए।

**पंचमहायज्ञ** – शास्त्रों में प्रत्येक व्यक्ति के लिए प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने का विधान है। इसके अन्तर्गत स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ), तर्पण (पितृयज्ञ), हवन (देवयज्ञ), पंचबलि ( भौमयज्ञ) तथा अतिथिपूजन (नृयज्ञ) – ये पंचयज्ञ आते हैं। बलिवैश्वदेव तथा पंचबलि में ही ये समाहित हैं। अतः इसे प्रतिदिन करना चाहिए।

**चरणामृत ग्रहण** – पूजन आदि से निवृत्त होकर तुलसीदल से युक्त प्रभु का चरणामृत ग्रहण करना चाहिए। तुलसीदल–चरणामृत की बड़ी महिमा है। भगवान का चरणामृत भक्तों के सभी प्रकार के आर्तों (दुःख और रोग) का नाश करता है और सम्पूर्ण पापों का शमन करता है। निम्न श्लोक पढ़ते हुए चरणोदक पान करने का विधान है–

**अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।**
**विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।।**

पूजन, भोजन तथा आचमन आदि कृत्यों में तुलसीदल का विशेष महत्व माना गया है।

**भोजन** – भोजन तैयार हो जाने पर सर्वप्रथम बलिवैश्वदेव तथा भगवान का भोग लगाना चाहिए। भगवान के भोग में तुलसीदल छोड़ने का विधान है। तुलसीदल का विशेष महत्व बताया गया है। इसका वैज्ञानिक रहस्य यह है कि भोजन में तुलसीदल डालने से न्यूनाधिक परिमाण में विद्यमान अन्न की विषाक्तता तुलसी के प्रभाव से शमित हो जाती है – 'तुलसीदलसम्पर्कादन्नं भवति निर्विषम्।' अतः जब भी भोजन करें तो पहले भगवान को निवेदन करके प्रसादरूप से ही ग्रहण करें। पैरों को धोकर, भलीभांति कुल्ला करके, हाथ–मुँह धोकर भोजन करना चाहिए। भोजन करने से पूर्व घर पर आये अतिथि का सत्कार करें। फिर अपने घर में आयी विवाहिता कन्या, गर्भिणी स्त्री, दुःखिया, वृद्ध और बालकों को भोजन कराकर अन्त में स्वयं भोजन करना चाहिए। इन सबको भोजन कराये बिना जो स्वयं भोजन करता है, वह पापमय भोजन करता है।

क्रमशः

# योगेश्वर चरित्र माला – श्री मंगामल

(श्री सद्गुरुदेव जी)

लगभग सन् 1928 की बात है, श्रीआनन्दकन्द श्री गुरुदेव योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज अमृतसर गाई के कटरे में निवास कर रहे थे। श्री गुरुदेव जी को हिमालय से लौटे कुछ ही समय हुआ था। शहर के लोगों को यह ज्ञान था कि ये साधारण भेष में छिपे हुए कोई महापुरुष हैं, इसलिए स्त्री–पुरुषों के यातायात का तांता लगा रहता था, सत्संग प्रायः चौबीसों घन्टे चलता रहता था। सभी स्त्री–पुरुष श्रेणीबद्ध होकर के अपने ध्यानाभ्यास वृद्धि के लिए आसन जमा–जमा कर बैठते थे। जो उस प्रवाह में आकर बैठ जाता था उसी को बड़े–बड़े दिव्य अनुभव जारी हो जाया करते थे और वही व्यक्ति इस अनुपम लाभ को पाकर के मग्न हो जाता था। सत्संग में आने वालों की भीड़ उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। गली के मुख्य द्वार पर उसी गली के निवासी जिनका शुभ नाम मंगामल था, जो सोडा वाटर आदि की दुकान करते थे, स्त्री–पुरुषों की भारी भीड़ को आते–आते देखकर उनके मन में भी यह ख्याल पैदा हुआ कि हम भी जाकर देखें कि इनमें क्या रहस्य है। ये स्त्री–पुरुष इतनी भीड़ भाड़ के साथ इनके पास क्यों जा रहे हैं। श्री मंगामल उस समय युवावस्था में थे उनका जन्म एक पवित्र क्षत्री कुल में हुआ था। किन्तु उनके आस–पास इष्ट मित्रों का इस प्रकार का संग प्राप्त हुआ कि जिसके फलस्वरूप वह किसी अवगुण से खाली नहीं रह सके। युवावस्था की तरंगें थीं। मन पर कुसंग का प्रभाव था इसलिए उन्हीं लहरों के अन्दर वे बहुत अधिक भोग–विलास की सामग्री इकट्ठी किया करते थे। इसी प्रकार - वातावरण से निकलते हुए किसी युवती का प्रभाव उनके मन पर पड़ा जो लाहौर में निवास करती थी और चरित्रहीन थी। श्री मंगामल के मन में उससे शादी कर लेने की धुनि सवार हुई और इस प्रकार का प्रयत्न करते रहे कि जिसके द्वारा वे सफल मनोरथ हो सकें, किन्तु प्रयत्न करने पर भी वह किसी भी प्रकार से सफलता नहीं पा सके। उस युवती के सौन्दर्य से भारी डाह श्री मंगामल के मन में उत्पन्न हो गया और उन्होंने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय किया ''देहं वा पातेयं कार्यं वा साधेयं'' अर्थात् मैं अपने शरीर का नाश कर दूंगा अथवा जिस तरह भी हो सकेगा अपने इस काम को सिद्ध कर लूंगा। किन्तु जब वह किसी भी प्रकार से सफल प्रयास न हो सके तो उनका मन श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्दों की ओर आकर्षित हुआ। श्री मंगामल सोचने लगे कि ये योगिराज जी बड़े भारी शक्तिशाली हैं जिसके फलस्वरूप इतने लोगों की भीड़–भाड़ हर समय इनके पास लगी रहती है। अवश्य यह कोई आकर्षण मंत्र जानते हैं क्यों नहीं मैं कुछ दिन इनके सत्संग में जाकर उस मंत्र को सीख लूं जिसमें मैं मनोभिलषित फल को पा सकूं, हुआ भी ऐसा ही। श्री मंगामल मेरे गुरुदेव के चरणारविन्द में नित्य नियम से

जाने लगे, उनके मन में भारी लगन थी कि उपरोक्त लाहौर वाली युवती से उनका सम्बन्ध कायम हो जाय। किन्तु एक महीना लगातार आने पर उसको इस प्रकार की प्रार्थना करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ कि वह श्री प्रभु जी के चरणारबिन्द में अपने मन के भाव कह सके। बार-बार श्री गुरुदेव जी उसको सम्बोधन करके पूछते थे कि मंगामल तुम कैसे आते हो, भरे समाज में मंगामल अपनी इच्छा को प्रकट नहीं कर सकते थे इसलिए वह बनावटी शब्दों में कह दिया करते थे कि महाराज जी मेरा कोई खास प्रयोजन नहीं है जिस प्रकार और व्यक्ति आते-जाते हैं मैं भी चला आता हूँ। मंगामल की भीतरी भावना को मेरे श्री गुरुदेव जी भली प्रकार समझते थे, उनकी बात को सुनकर के वह मुस्करा जाते थे और कह देते अच्छा कोई बात नहीं। अच्छा ही है तुम भी सत्संग में आ जाया करो। बड़े आश्चर्य की बात थी कि श्री मंगामल लगातार एक महीना इसी प्रकार बराबर सत्संग में आते रहे किन्तु उनको कोई इस प्रकार का मौका नहीं मिला कि वह अपने मनोभावों को प्रगट कर सकें। श्री मंगामल चाहते थे कि उनको कोई एकान्त का समय मिल जाय किन्तु भारी प्रयत्न करने पर भी वह श्री गुरुदेव को अकेला न पा सकें और न ही अपने मनोभावों को कह सके। अन्त में निराश हो गये और यह चाहा कि यहां आना तो व्यर्थ ही है न एकान्तिक अवसर मिलेगा और नही मैं अपने मुख से कोई वाणी कह सकूंगा। जिस समय मंगामल के मन में इस प्रकार के भाव दृढ़ता से अधिकार करने लगे तो श्री गुरुदेव जी ने पूर्ण कृपा करके उसको एकान्तिक अवसर दे दिया, जिससे मंगामल के मन में अतिशय हर्ष बढ़ा और उसने अपने मनोभाव योग-योगेश्वर श्री गुरुदेव जी से कहने आरम्भ किये। मनुष्य का मन जिस प्रकार के रंग में रंगा हुआ करता है वह उसी प्रवाह में दूसरों को देखा करता है। मंगामल के विचार थे कि श्री गुरुदेव जी कोई जादू जानते हैं जिसके फलस्वरूप वह जिसको चाहे अपनी ओर आकर्षित कर लेते है इन्हीं भावों को मन में दबाये हुए मंगामल ने अपने विचार श्री गुरुदेव जी के चरणारबिन्दु में प्रगट किये और कहा महाराज जी जिनको आप जादू करके नित्य खींचते है वह क्या चीज है। आप यह जादू या मंत्र कृपा करके मुझे बतला दीजिए। कुछ ही दिन के अन्दर मैं आपको एक ऐसी रूपराशि दिखलाऊंगा कि आप स्वयं चकित हो जायेंगे, और कहेंगे वाह मंगामल जो कुछ तू कहता था वह ठीक ही है। मंगामल को इस बात का क्या पता था कि उन योग योगेश्वर सर्व समर्थ श्री गुरुदेव को त्रिभुवन का ऐश्वर्य भी आश्चर्य में नहीं डाल सकता। जो सारे अण्ड ब्रह्माण्ड को अपनी दिव्य दृष्टि द्वारा न कुछ की बराबर देख चुके है किन्तु मंगामल ने अपने मनोभावों को अपने मन के अनुसार कहा। उसके उन भावों के अनुसार श्री महाराज जी हँस पड़े और कहा कि अच्छा यदि ऐसी बात है तो थोड़ी देर यहां बैठा रह हम एक ऐसा उपाय करते हैं जिससे तेरा काम बन जायेगा किन्तु उस काम को उसी प्रकार करना जैसे हम बतायें। यह कहकर श्री गुरुदेव जी ने एक सफेद कागज मंगवाया और उस पर लिख दिया कि तू फलाने दिन इतने बजकर इतने मिनट पर उस गाड़ी में लाहौर जायेगा और लाहौर पहुँचकर प्रयत्न करके उस युवती को अपने अधिकार में ले आयेगा

और वह तुम्हारे साथ चली आयेगी। किन्तु कुछ समय के सम्पर्क के बाद वह तुम्हारा इतना इतना जेवर इतना रुपया व चाँदी सोना लेकर भाग जायेगी और उसके जाने के बाद तुम्हारे मन में भारी क्लेश पैदा होगा और फिर तुम उसको पुन: अपने पास लाने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न में लग जाओगे। उसी मौके पर उस युवती का एक पत्र लाहौर से आयेगा उसमें लिखा होगा कि इतना रुपया लेकर आप लाहौर चले आयें उस रुपये की मुझे आवश्यकता है और उसके बाद सारे संसार को छोड़कर के मैं आपकी ही हो जाऊंगी किन्तु यह बात उसकी कपट पूर्ण होगी। यदि तुम वह रुपया लेकर उसके पास पहुँच गये तो एक बार प्रेम–भाव दिखाकर तुम से रुपया ले लेगी और उस एक ही रात्रि के अन्दर तुम्हारा प्राणान्त कर देगी। किसी को पता भी नहीं चलेगा कि तुम वहाँ गये भी थे या नहीं, यह होनहार है और उस युवती के साथ तुम्हारा संस्कार है किन्तु एक माह लगातार तुम यहाँ आते रहे हो उसके फलस्वरूप जिस समय उस स्त्री के मँगाये हुए रुपये लेकर तुम दोबारा लाहौर जाने को तैयार होंगे उस समय वह सर्व शक्तिवान प्रभो तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम्हें इस जाल से अवश्य निकाल लेंगे। यह सब बातें उस पत्र में लिख दी और वह पत्र लिफाफे में बन्द करके मंगामल को दे दिया और कह दिया इस लिफाफे को अपनी सन्दूक में छिपा कर रख लो, इसको पढ़ना नहीं। जब हम तुम्हें खोलकर पढ़ने की आज्ञा दें तभी तुम पढ़ना, यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो इसका परिणाम खराब होगा और किसी भी प्रकार की सफलता तुम्हें नहीं मिलेगी। मंगामल ने श्री महाराज जी के कर–कमलों से वह पत्र अपने सन्दूक में रख दिया और उसके बाद मंगामल पूर्ववत अपने कार्य–कलाप में लग गये। शनै:शनै: समय आया। मंगामल लाहौर पहुँच गये और उस युवती को ले आये और पत्र के लेखानुसार ही सब कार्य उनके हो गये। उस स्त्री को लाकर सभी कुछ भूल गये और उसी के रंग में रंगे रहने लग गये। उसी प्रकार से दिन व्यतीत हो जाने के बाद उपरोक्त युवती मंगामल के बहुत से रुपये को एवं सोने–चाँदी के जेवरों को लेकर भाग गई और कुछ ही समय के बाद उसने पत्र लिख दिया कि तुम इतना–इतना रुपया लेकर मेरे पास आ जाओ, उसके बाद मेरा लोगों से सदा के लिए सम्पर्क छूट जायेगा और मेरी भागा–दौड़ी सब कुछ छूट जायेगी। मेरा यह शेष जीवन आपके साथ ही व्यतीत होगा। मंगामल उस पत्र को पढ़कर पुन: लाहौर जाने को तैयार हुए। अपनी दुकान से लगभग 300 रु. लेकर पुन: लाहौर जाने को तैयार हुए वह अपनी दुकान पर खड़े थे। इतनी ही देर में योग–योगेश्वर श्री महाराज जी कहीं से घूमते हुए आये और अपने आप ही उस मंगामल से बोले कि मंगामल वह जो पत्र हमने तुम्हें लिखकर दिया था इस समय उसको अब खोलकर पढ़ लो। अब तुम्हारा काम उसके पढ़ने से बनेगा। यदि तुम इस पत्र को नहीं पढ़ोगे तो अवश्य बड़ा भारी धोखा खा जाओगे एवं अपने मनुष्य जीवन को व्यर्थ ही खो बैठोगे। मंगामल ने श्री महाराज जी की वाणी सुनकर उस पत्र को निकाला और ज्योंही खोलकर पढ़ा तो उसमें वह घटना लिखी थी, जो अभी तक के जीवन में व्यतीत हो चुकी थी। इस पत्र को पढ़कर मंगामल को अपने मन में बड़ा भारी आश्चर्य हुआ और उसने यह

विचार किया कि इस पत्र में लिखी घटना ज्यों की त्यों घटित हो गई है। अतः उस स्त्री के हाथों मेरी मृत्यु अवश्यमभावी है किन्तु तत्काल ही माह ने रंग जमाया और मंगामल पुनः उस युवती के प्रेम विभोर हो गये एवं श्री महाराज जी से हाथ जोड़कर कहने लगे कि महाराज आपने जो कुछ लिखा है वह तो बिल्कुल सही है किन्तु उसके हाथों मारा जाऊँ यह भी मेरे पुण्य का ही फल है। इसलिए मैंने लाहौर अवश्य जाऊँगा और एक कृपाण अपने साथ ले जाऊंगा जितना रुपया उसने मंगाया है वह सब रुपया उसको देकर बाद में तेज धार की कृपाण उसके हाथ में दे दूंगा और निःसंकोच कह दूंगा कि तुम्हें रुपये की आवश्यकता थी वह रुपया मैंने हाजिर कर दिया है और उसके साथ–साथ यह कृपाण हाजिर है, और मेरी गर्दन हाजिर है। अतः तुम मुझे निःसंकोच कत्ल कर दो, मुझे तुम्हारे दर्शन की ही अभिलाषा थी वह मेरी पूर्ण हुई। अब मेरी अन्तिम अभिलाषा है कि तुम्हारे हाथ से मरकर मेरे प्राण छूट जायं जिससे मैं तुम्हारे हाथों मरकर सुखमय लोक को चला जाऊँ। श्री महाराज जी ने उसके इस प्रकार के विचारों को सुनकर उसको आज्ञा दे दी और कह दिया अच्छा जाओ तुम स्वयं ही मरना चाहते हो तो हम क्या कर सकते हैं किन्तु मंगामल के उज्जवल प्रारब्ध आ चुके थे उन कृपा सागर की कृपा प्राप्त करनी थी। *'साधु वचन पलटे नहीं पलट जाय ब्रह्माण्ड'* की युक्ति के अनुसार श्री महाराज जी ने अपने पूर्व कहे हुए वचन को निभाना था, इसलिए मंगामल अमृतसर स्टेशन गये और शनैः शनैः उसका मन बदलने लगा उसने स्टेशन पर जाते–जाते विचार किया क्या फायदा होगा वह यह सब धन भी ले लेगी और मेरा कत्ल कर देगी क्यों मरूँ? जिन सर्व शक्तिवान ने भूत–भविष्य की बातें सब पहले ही लिखकर दे दी हैं। मैं उन्हीं की शरण जाकर क्यों न हो जाऊं। जो सब कुछ कर सकते हैं। यदि वह चाहेंगे तो कृपा करके मेरी इस कामना को अवश्य पूर्ण कर देंगे इसलिए मैं चलूं और उन्हीं के चरण पकड़ लूं। इन्हीं विचारों को लेकर मंगामल लौट आये और स्थान पर आकर योग–योगेश्वर श्री गुरुदेव जी के चरण पकड़ लिये और प्रार्थना की कि हे सर्व शक्तिवान! मेरी कामनाओं के आधार आप ही हैं कृपा करके आप मेरी सहायता कीजिए। मंगामल के इस प्रकार की अभ्यर्थना करने के बाद श्री गुरुदेव जी ने उस पर अनुग्रह किया एवं योग–मार्ग में दीक्षित कर शक्तिपात किया जिससे पहले ही दिन में उसके तन मन का सारा ही रंग बदल गया। मंगामल को प्रातः लगभग 9 या 10 बजे ध्यान में बैठाया गया और वह शाम के लगभग 4 बजे तक अनवरत अपने ध्यानाभ्यास में बैठा रहा। ध्यान के आनन्द में उसने अपनी सुध–बुध को बिल्कुल भुला दिया वह इतना मग्न होकर के बैठ गया कि सुध दिलाने पर भी उसको सुध नहीं आती थी। अन्त में शाम के लगभग 5 बजे उसको गुरुदेव जी ने स्वयं उठाया। उनके उठाने पर भी उसने बार–बार उठने से इन्कार कर दिया और प्रार्थना की कि महाराज जी आप कृपा करके मुझे इसी प्रकार बैठा रहने दें। जिससे मेरे शरीर के अन्दर निवास करने वाले सभी देवी–देवता यथा स्थान ज्यों के त्यों बैठे रहें और मैं उनको देखता रहूँ। श्री गुरुदेव व अन्य सत्संगी जो उसके पास थे उसकी स्थिति को देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

मंगामल दिन प्रतिदिन अपने ध्यानाभ्यास को बढ़ाने लगे और उनका जीवन एक उच्च सन्त के रूप में परिवर्तित होने लगा। कुछ ही समय के बाद मंगामल एक सच्चे सन्त के रूप में बदल गये, उनके मन की वासनायें सब नष्ट हो गई। उन्होंने अपने पहले जीवन को नरक की कोप समझा और अपने इस जीवन को कल्याण-स्रोत अमर निर्मल धारा जाना। इस उच्चतम ध्यान-योग के अभ्यास को पाकर श्री मंगामल एक दम विरक्त स्थिति के अन्दर आ गये। जिस युवती में उनका अनुराग फँसा हुआ था अब वह उनको विषवत् दिखाई देने लगी एवं श्री मंगामल सब प्रकार से कृतार्थ हो गये।

*- वैसे तो दुनिया में व्यक्ति के जानने-मानने में कोई कमी नहीं है। बहुत विस्तार से वह न जाने कितनी जानकारी (खोज) करता जा रहा है। किसी ने हवाई जहाज उड़ा दिया तो किसी ने रेडियो, टीवी, कम्प्यूटर-जैसी आश्चर्यजनक चीजें जुटा ली हैं। फिर भी उसकी समझ का अन्त नहीं आया और आये भी कैसे? उसने स्वयं को तो जाना-समझा ही नहीं कि आखिर मेरा लक्ष्य क्या है?*

*- मनुष्य को सबसे बड़ा डर है, वह है मौत का, जो जन्मने के बाद क्रमशः हर क्षण प्रत्येक श्वास पर हो ही रही है, चाहे ब्रह्मा ही क्यों न हो? अतः इस चलते (बहते) हुए जीवन से कुछ ऐसा प्राप्त कर लें, जिसका कभी विनाश ही न हो।*

*(एक संत अमृत - वाणी)*

# श्री प्रभु चरणों में समर्पित

– राजेश कुमार सिंह, बलिया

जिंदगी का सितम सह लूंगा, गर सामने तू मेरे हो,
शिकवा लबों पर होगी ना, गर सामने तू मेरे हो।
...(1)
कांटों पर मेरी कदम पड़े, चाहें शोलों से गुजरना हो,
हर शै में तुमको ही पाऊं, तेरे रंग में ही संवरना हो,
दर्द-ओ-गुरुवत कुछ नहीं, गर सामने तू मेरे हो।
शिकवा लबों पर...
तेरी कायनात में तेरे सिवा, अपना कोई दिखा नहीं,
...(2)
जो तसल्ली दे दिल को, अब तक मुझे मिला नहीं,
इस जग से मुख को मोड़ लूं, गर सामने तू मेरे हो,
शिकवा लबों पर...
...(3)
जब ख्याल आये तो आपका, आंखों में ख्वाब आपका,
होठ खुले तो नाम हो बस, राम-मोहन आपका,
दर्पण अपना तोड़ दूं, गर सामने तू मेरे हो,
शिकवा लबों पर...
प्रभु तेरे-मेरे इश्क का, कुछ इस तरह का राज हो,
...(4)
तुझको मुझ पर नाज हो, और मुझको तुझ पर नाज हो,
राजेश शुकूं से दम तोड़ूं, गर सामने तू मेरे हो।
शिकवा लबों पर...
जिंदगी का सितम...

# स्वयं भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

– अवनीश भटनागर, सहारनपुर

कुर्तुम अकुर्तुम शक्ति वाले योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी अपने भक्तों को वह सब प्रदान करने में समर्थ हैं जो देवी देव भी अपने भक्तों को नहीं दे सकते. वह अति दुर्लभ वस्तु क्या है? उसको शास्त्रों में 'कैवल्य मोक्ष' नाम से सम्बोधित किया गया है और अति दुर्लभ भी बताया गया है। योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी अपने भक्तों को दैविक, दैहिक, भौतिक सभी प्रकार के सुख उपलब्ध करा देते हैं। कौन सा ऐसा कार्य है जो उन्होंने अपने भक्तों के हित में नहीं किया। निर्धनों को धनवान बनाया, रोगी को निरोग बनाया, निःसन्तानों को सन्तान प्रदान की, पुत्र की चाह वालों को पुत्र प्रदान किये, मृतकों को भी पुनर्जीवित कर दिये, पद, मान, प्रतिष्ठा उनके संकल्प से भक्तों को याचना करते ही प्राप्त हो जाती थी। जैसे ही भक्त उनसे प्रार्थना करते थे, तुरन्त ही वह दया करके शक्ति संचार कर पुष्प प्रसाद दे देते थे और कैसा भी कार्य हो वह तुरन्त बन जाया करता था। देवी देवता तक भी उनसे शक्ति संचारित पुष्प प्रसाद पाने की याचना किया करते थे। उनके दिव्य सिद्ध संकल्प से भक्तों को अच्छे–अच्छे रिश्तों के संयोग बने, नौकरियों और व्यापार, मकान दुकानों के आशीर्वाद मिले। आध्यात्मिक जगत में प्रवेश मिला, आध्यात्मिक परमानन्द की प्राप्ति हुई, ऊँचे–ऊँचे योगी, ध्यानी, नियमी, संयमी, समाधिस्थ सिद्धयोगी बनाये। इनमें से अनेक गुरुभक्त महानता को प्राप्त हुए। जिनकी योग्यता से संसारीजन आज अनेक लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

जरा विचार तो करके देखिये यह सब जगत कल्याण के कार्य क्या सामान्य व्यक्ति के वश की बात है? क्या छोटी–मोटी योग्यता का व्यक्ति यह सब कर सकता है? नहीं। 'सत्य प्रतिष्ठायां क्रिया फलश्रत्वं' सत्य में स्थित हुआ योगी जिसे सत्य ही दिखाई दे, सत्य ही सुनाई दे, सदा सत्य बोले और हर प्रकार से सत्याचरण ही उसके द्वारा होता है। समाधि अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा जागृत हो गई हो, वहाँ पर उसे आध्यात्मिक प्रसाद यानि उसकी कठिन तपस्या का फल प्राप्त होता है। वह उसकी अपनी कमाई है। किसी ने दया करके नहीं दी। वह अपनी शक्ति का स्वामी स्वमेव होता है और आगे चलकर उसकी योग्यता दिनों दिन बढ़ने पर वह सिद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है। जहाँ कुर्तुम अकुर्तुम सर्वशक्ति सः सिद्धः हो जाता है। ब्रह्म में लीन हुआ योगी स्वयं ब्रह्म ही हो जाता है। हमारे पावन चरण सद्गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु जी इससे कहीं बढ़कर योग्यता वाले सिद्ध सिद्धेश्वर महाप्रभु हैं। उनके तो बालक ही सिद्धावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। श्री श्याम बिहारी शुक्ल महायोगी, श्री संसार सिंह प्राणायाम सिद्ध, महायोगी टाट बाबा आदि। ऊँचे योगी ध्यानियों में महात्मा अमीरानन्द जी, ईश्वरी प्रसाद

खड्डर जी, महेन्द्र नारायण जी हरीभक्त चैतन्य जी, गृहस्थियों में भी अनेक ऊँचे योगी ध्यानी बनाये। अनेक योगी पर्वत कन्दराओं में, झील में जो समाधिस्थ हैं आदि। जिनकी मिसाल अन्यत्र नहीं मिल सकती। एकान्त में योग साधना करना सरल हो सकता है। परंतु गृहस्थ में योग ध्यान करना अत्यन्त कठिन है। परंतु सद्गुरुदेव जी के गृहस्थी बालक तो बहुत अच्छी ध्यान स्थिति वाले रहे हैं। हिमालय के किसी योगी ने कहा था कि योगीराज चन्द्रमोहन जी के बालक दाल रोटी खाने वाले गृहस्थियों में रहते हुए भी ऊँचे योगी ध्यानी एवं भारी योग्यता वाले हैं। हम तो हिमालय में रहकर वन जंगलों, पर्वतों में कन्दमूल फल खाकर तब कहीं ऐसी योग्यता प्राप्त करते हैं।

यह समस्त कार्य ईश्वरीय है। ईश्वर ही ऐसे कार्य कर सकता है। भगवान श्री कृष्ण ने अनेक बार हमारे सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी के लिए भक्तों से यह कहा कि चन्द्रमोहन जी कोई और नहीं मैं ही हूँ। अब विचार करना ही पड़ेगा कि जब हमें ईश्वर साक्षात् प्राप्त हो गये, हमारे सामने चलते–फिरते, खाते पीते, सोते जागते रहे, हमने उनकी सेवा भी की, उनको स्पर्श भी किया, उन्होंने हमें स्पर्श किया हमारे सुख दुख का ख्याल रखा प्रसन्न होकर अपने कल्याणकारी संकल्प में हमें ले लिया। दया करके निहाल व मालामाल कर दिया। कुछ नहीं थे हम पर बहुत कुछ बना दिया। सब कुछ दिया तो है महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी ने आवश्यकता पड़ने पर रक्षा करके सुरक्षा भी वही प्रदान करते हैं। हर समय खड़े रहते हैं अपने भक्तों के कल्याण के लिए, पर भक्तों की क्या कहें जाने कौन से भगवान को पाना शेष रह गया, अब जो जगह–जगह मारे–मारे घूमते हैं। अपनी आस्था को जगह–जगह लुटाते घूमते हैं। कहीं पूजा करते हैं, कहीं पाठ करते हैं, कहीं पहाड़ पर चढ़ते हैं। कहीं पानी में घूमते हैं। कहीं अनावश्यक धन खर्च करते हैं। पण्डित, पुजारियों मुल्ला मौलवियों, तान्त्रिकों, महन्तों महात्माओं, कथा वाचकों की सेवा में लगे रहते हैं। किसी तरह हमारा लाभ हो जाये, पर होता कुछ नहीं। अरे भक्तों जितना तुम्हें जीवन में लाभ सुख मिलना था उससे अधिक तुम्हारे अपने गुरुदेव तुम्हें देते रहे हैं और अब भी दे रहे हैं। वो ही है तुम्हारे दाता तुम उन्हें बार–बार भूलते हो वह नहीं भूलते तुम्हें। तुम्हारे भगवान भी वही हैं, दाता भी वही हैं, खाता भी वही हैं। उन्हें ही भोग लगाओ। उनकी ही उपासना करो। उनसे हटकर भगवान नहीं, उन्हीं में भगवान है। वह सर्वशक्तिमान परब्रह्म सद्गुरु तत्व का साकार विग्रह है। जिनका नाम है योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन महाप्रभुजी। कट्टर एवं पूर्ण समर्पित भक्त बनो प्रभुजी के उनके अलावा या उनके बिना कैसी आराधना, कैसी साधना, कैसा जप, कैसा तप, स्वाध्याय ध्यान समाधि सभी शुभ फलहीन हो जाते हैं। श्री महाप्रभु जी ही बुद्धि एवं सिद्धि के सहज प्रदाता हैं। श्री प्रभु जी ऐसे दाता हैं जो नर से नारायण बनाकर और अति दुर्लभ मोक्ष कैवल्य के कृपा कटाक्ष रूपी प्रसाद से अपने भक्तों को निहाल और मालामाल निरन्तर करते आ रहे हैं, जो दृढ़ लौकिक सुख तो भक्तों को प्रदान करते ही हैं, इसी बीच उन्हें आध्यात्मिक मार्ग का पथिक बना धीरे–धीरे योगारुढ़ बना देते हैं। नहीं तो भक्त

बने मांगते घूमते रहते हैं, मन्दिर मन्दिर या तो संसारी सुख मिलता नहीं और यदि मिल जाता है तो और फँस जाते हैं। जन्म मरण के चक्कर में अब मुक्ति कहाँ मुक्ति तो इन सबसे अपने को बचाकर सर्वशक्तिमान सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाप्रभु के पावन सिद्ध संकल्प में आ जाने से ही है। यही सच्चा और सत्य आनन्द है और यही जन्म मरण के चक्कर से सदा के लिए छुटकारा दिला सकता है।

## शोक संवेदना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि हमारे टूण्डला निवासी भाई श्री वीरेश्वर सिंह चौहान की धर्मपत्नी मनोरमा सिंह चौहान (उम्र 68 वर्ष) का 30 अगस्त 2011 को देहावसान हो गया है।

श्री प्रभु जी दुःखी परिवार को इस महान दुःख को सहन करने की ताकत दें व दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में जगह दें।

*– सम्पादक सिद्धयोग*

# भाव - प्रसून

– डॉ. श्रीमती सरिता भारद्वाज, नई दिल्ली

ॐ जय गुरुदेव नमो प्रभु जय गुरुदेव नमो।
पावन प्रेम की सरिता नित प्रति बहा करें।।
योगेश्वर योगीश्वर, योग निधि तुम हो। प्रभु योग
योग मार्ग दिखलाकर बन्धन मुक्त करें।। ॐ जय ...
अविनाशी अज ब्रह्मा, दुःख भंजन विष्णु। प्रभु दुःख
आशुतोष शिव तुम ही नित्य कल्याण करें।। ॐ जय गुरुदेव
करुणा दया के सागर तुम घट-घट वासी। प्रभु तुम घट...
तुम तजि जाहिं कहाँ अब, शरण गहैं किसकी।। ॐ जय ...
तुम ही सत् चित् आनन्द, सकल कला राशी। प्रभु.
परम पूर्ण परमेश्वर, सब दुःख दूर करें।। ॐ जय ...
ज्योतिर्मय हो प्रभु तुम, जग ज्योतित तुम से। प्रभु जय
अन्तर्तमस् मिटा के, ज्ञान प्रकाश धरें।।ॐ जय ...
श्रद्धा विनय प्रेम से, जो तुमको ध्यावें।। प्रभु जो तुमको...
कहत 'सरित' संशय बिन मुक्ति भक्ति पावें।। ॐ जय ...

अज्ञान तिमिर से अन्ध जगत के,
ज्ञानांजन दे नयन खोल दे।
मंत्र शक्ति की चिनगारी से,
शक्तिपात कर शक्ति घोल दे।
ऐसे गुरु जो मिलें शीश दे,
'सरिता' सौदा सस्ता जान ले।।
जन्म-मरण के बन्ध काट यह
मानव जीवन सफल मान ले।।

# अमृत कण

अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृति।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद् दुरासदम्।।

(वायु पुराण 57/117)

किसी भी प्राणी के साथ द्रोह न करना, लोभ से दूर रहना, इन्द्रियों को वश में रखना, प्राणिमात्र के प्रति दया का भाव रखना, स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, सच बोलना, दुखियों से सहानुभूति रखना, अपराधी को क्षमा कर देना और कष्ट पड़ने पर धैर्य धारण करना – सनातन धर्म की जड़ यही है, जो अन्यत्र दुर्लभ है।

⌘ ⌘ ⌘

यत् क्रोधनो यजति यच्च ददाति नित्यं
यद् वा तपस्तपति यच्च जुहोति तस्य।
प्राप्नोति नैव किमपीह फलं हि लोके
मोघं फलं भवति तस्य हि कोपनस्य।।

(वामन पुराण 43/89)

क्रोधी मनुष्य जो कुछ भी भजन–पूजन करता है, जो कुछ नित्य प्रति दान करता है, जो कुछ तपश्चर्या करता है और जो कुछ भी हवन करता है, उसका इस लोक में उसे कोई फल नहीं मिलता, उस क्रोधी का सब कुछ किया–कराया व्यर्थ होता है।

⌘ ⌘ ⌘

परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदामतिशंका च त्रयो दोषाः क्षयावहाः।।

पराये हक छीन लेना, पर स्त्री–संसर्ग और अपने हित–मित्रों से अत्यधिक संशकित रहना– ये तीन दोष सर्वनाश करने वाले हैं।

⌘ ⌘ ⌘

न तथा शीतल सलिलं न चन्दनरसो न शीतला छाया।
प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी।।

(भविष्य पुराण ब्राह्मपर्व 73/48)

ठंडा जल, चन्दन का रस अथवा ठंडी छाया भी मनुष्य के लिए उतनी आह्लाद जनक नहीं होती, जितनी कि मीठी वाणी।

# मीडिया पोस्ट

## हृदय स्पर्शी सेवा

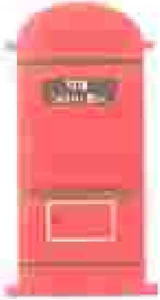

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आवंटन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड ... पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।


SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11

OCTOBER-2011

प्रेषक कार्यालय :

**सिद्धयोग**

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
आध्यात्मिक का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री


संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दाऊलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एस जी योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566.

सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दाऊलाल शर्मा